तत्त्वार्थसूत्रम्

Tattvārthasūtram

अष्टमोऽध्यायः

Eighth Chapter

तत्त्वार्थसूत्र

अष्टम अध्याय

इसमें **बन्ध तत्त्व** के कारणों को चित्राङ्कित किया गया है। चित्र के मध्य में जीवाकृति है, जो बन्ध की जंजीरों से जकड़ी हुई है। आकृति के मध्य में तपे हुए लोहे के गोले को दर्शाया है, जिसमें कर्माणु के बारीक बिन्दु चारों तरफ से चिपकते दिखाये हैं। मानवाकृति के ऊपर दायें-बायें आठ कर्म इङ्गित किये गये हैं।

ऊपरी भाग में **आयु कर्म**। चित्र के ऊपर बायीं तरफ प्रथम भाग में **नामकर्म**। इसके नीचे भाग में **अन्तराय कर्म** व सबसे अन्त में **ज्ञानावरण कर्म** आँखों पर पट्टी बाँधे दिखाया है।

चित्र के ऊपर दायीं तरफ प्रथम भाग में **गोत्र कर्म**। उसके नीचे **वेदनीय कर्म** व उसके नीचे **दर्शनावरण कर्म** और अन्त में **मोहनीय कर्म** को दिखाया है।

चित्र के निचले भाग में बन्ध के कारणभूत मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग को दिखाया है।

योग – प्रथम भाग में मन, वचन, काय के द्वार के साथ मनुष्याकृति चित्रित है। उसके नीचे 13 लाइनें तेरहवें गुणस्थान तक जाते योग को दर्शा रही हैं।

प्रमाद – दूसरे भाग में प्रमाद दर्शित है, स्त्री विकथा आदि पढ़ते व्यक्ति के रूप में व 6 लाइनें प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक की प्रतीक स्वरूप हैं।

मिथ्यादर्शन – तीसरे भाग में रागी साधु आदि दिखाये दिये हैं। उसके नीचे एक लाइन प्रथम गुणस्थान को इङ्गित कर रही है।

अविरति – चौथे भाग में अविरति पाँचों इन्द्रियों में लिप्त दिखाया है। नीचे पाँच लाइनें पञ्चम गुणस्थान तक को बता रही हैं।

कषाय – पाँचवें भाग में चारों कषाय व नीचे 10 लाइनें 10वें गुणस्थान के रूप में दर्शित हैं।

बन्ध में पाँचों पापों की भागीदारी को छोटे-बड़े आकारों में व जंजीर से बाँधे दिखाया गया है।

तत्त्वार्थसूत्रम्
Tattvārthasūtram

अष्टमोऽध्यायः
Eighth Chapter

बन्ध के हेतु
Means of Bondage

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः।।१।।

(मिथ्यादर्शन–अविरति–प्रमाद–कषाय–योगाः बन्ध–हेतवः।)

Mithyādarśanāviratipramādakaṣāyayogā Bandhahetavaḥ. (1)

शब्दार्थ : **मिथ्यादर्शन** – मिथ्यादर्शन यानी तत्त्वों का अयथार्थ श्रद्धान; **अविरति** – अविरति यानी विरति का अभाव; **प्रमाद** – प्रमाद यानी अच्छे कार्यों में आदर का अभाव; **कषाय** – कषाय यानी जो भाव आत्मा को कषे; **योगाः** – योग यानी मन, वचन और काय की क्रिया; **बन्धहेतवः** – (कर्म) बन्ध के हेतु।

Meaning of Words : **Mithyādarśana** - Wrong Faith or contrary belief; **Avirati** - vowlessness; **Pramāda** - carelessness or lack of respect for religious activities of the soul; **Kaṣāya** - passions i.e. feeling which overpower activities; **Yogāḥ** - Yoga or activities of mind, speech and body; **Bandhahetavaḥ** - (are) causes of bondage (of karmas).

सूत्रार्थ : मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग कर्मबन्ध के कारण हैं।

English Rendering : Wrong Faith (or contrary belief), vowlessness, carelessness, passions and Yoga (i.e. activities of mind, speech and body) are causes of bondage of karmas.

टीका : तत्त्वार्थों के अश्रद्धान या विपरीत श्रद्धान को मिथ्यादर्शन कहते हैं। इसके दो भेद हैं – नैसर्गिक (अगृहीत) मिथ्यात्व और परोपदेशपूर्वक (गृहीत) मिथ्यात्व। परोपदेश के बिना मिथ्यात्व कर्म के उदय से जो तत्त्वों का अश्रद्धान होता है, वह नैसर्गिक मिथ्यात्व है। परोपदेशरूप गृहीत मिथ्यात्व के पाँच भेद हैं – एकान्त, विपरीत, संशय, वैनयिक और अज्ञानिक/अज्ञान।

'यह ऐसा ही है, अन्यथा नहीं' इस प्रकार अनेक धर्मात्मक वस्तु के किसी एक धर्म को ही मानना। जैसे, सब पदार्थ नित्य ही हैं या अनित्य ही हैं अथवा सारा संसार ब्रह्मस्वरूप ही है, इस प्रकार का ऐकान्तिक अभिप्राय या हठ को एकान्त मिथ्यादर्शन कहते हैं। सग्रन्थ को निर्ग्रन्थ कहना, केवली को कवलाहारी कहना और स्त्री-सिद्धि मानना इत्यादि विपरीत प्ररूपण को विपरीत मिथ्यात्व कहते हैं। इस प्रकार का श्रद्धान कि किसी भी मत का मानने वाला यदि समतापूर्वक आत्मा का ध्यान करता है तो उसे अवश्य ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है, विपरीत या विपर्यय मिथ्यात्व है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्ष के मार्ग हैं या नहीं, इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान् के वचनों में सन्देह करना संशय मिथ्यात्व है। सभी देवी-देवताओं या सभी मतों को समान रूप से आदर की दृष्टि से देखना वैनयिक या विनय मिथ्यात्व है। हित और अहित का विचार किये बिना श्रद्धान करने को अज्ञानिक या अज्ञान मिथ्यात्व कहते हैं।

पाँच प्रकार के स्थावर और एक त्रस, इस प्रकार छह काय के जीवों की हिंसा का त्याग न करना और पाँच इन्द्रिय और मन को वश में नहीं रखना अविरति है। इस प्रकार अविरति के बारह भेद हैं।

अच्छे कार्यों के करने में आदर के भाव का न होना प्रमाद कहलाता है। प्रमाद के पन्द्रह भेद हैं – चार विकथा (स्त्री कथा, राज कथा, चोर कथा और भोजन कथा), चार कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ), पाँच इन्द्रियों के विषयों में अभिरुचि होना, निद्रा और प्रणय।

आत्मा में होने वाली क्रोध आदि रूप कलुषिता को कषाय कहते हैं। क्रोध, मान, माया, लोभरूप चार कषायें हैं। ये चारों प्रकार की कषायें पुनः चार प्रकार से वर्गीकृत की गई हैं – अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन। इस प्रकार कषायों के सोलह भेद होते हैं। नो-कषाय (अकषाय) नौ प्रकार की होती हैं – हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद। इसप्रकार कषायों और नो-कषायों के कुल पच्चीस भेद होते हैं।

मन, वचन और काय के द्वारा होने वाले आत्म-प्रदेशों के परिस्पन्दन को योग कहते हैं। योग भी पन्द्रह प्रकार का है – चार मनोयोग, चार वचनयोग और सात काययोग।

मिथ्यादृष्टि के ये पाँचों बन्ध के हेतु हैं। सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अविरत सम्यग्दृष्टि (दूसरे, तीसरे और चौथे गुणस्थान वाले जीव) को मिथ्यात्व के बिना अन्य चार – अविरति, प्रमाद, कषाय और योग – बन्ध के हेतु हैं। संयतासंयत और प्रमत्तसंयत (पाँचवें और छठे गुणस्थान वाले व्रती) को प्रमाद, कषाय और योग – ये तीन बन्ध के हेतु हैं। अप्रमत्त संयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण व

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान (सातवें से दशवें गुणस्थान तक के जीव) वालों को केवल कषाय और योग ही बन्ध के हेतु हैं। उपशान्त कषाय, क्षीण कषाय और सयोग केवली जिन (ग्यारहवें से तेरहवें गुणस्थान वाले जीव) को केवल योग से ही बन्ध होता है। अयोग केवली (चौदहवाँ गुणस्थान) बन्ध रहित होते हैं।

Comments : Dis-belief or contrary belief of the Realities as they are, is known as wrong faith. It is of two kinds - Agrahīta i.e. natural (i.e. without teaching by others), due to rise of perversity karma and Grahīta i.e. derived from teachings. The manifestation of disbelief in the true nature of Realities without teaching by others but due to rise of wrong faith karma is the natural wrong faith. The wrong faith derived by teaching of others, is of five kinds - absolutistic i.e. one sided attitude, contrary attitude, doubtful attitude, non-discriminating - attitude and attitude due to ignorance.

'It is only like this and not otherwise' - this kind of identification and insistance on a particular attribute of a thing out of its manifold attributes; for example, all things are only permanent or temporary and the Supreme being (Brahma) is the whole universe - to have such a belief is known as wrong faith of absolutistic attitude. 'An ascetic with material possessions is a passionless saint', 'the omniscient takes morsels of food' and 'woman attains liberation' are contrary attitudes known as worng faith or contrary attitudes. To have a belief that if any one belonging to any religion meditates on the nature of his own soul with equanimity will surely attain salvation irrespective of his religious inclinations is a contrary type wrong faith. The indecisive view, whether the three gems i.e. right faith, right knowledge and right conduct lead to emancipation or not and to entertain such a doubt in the preaching by the omniscient Jina is wrong faith of doubtful attitude type. To pay respect to all Gods and Godesses considering that they are all equal is the wrong faith of non-discriminating attitude type. Incapablity to examine what is good and what is not good to one-self is ignorant-attitude type wrong-faith.

Non-abstinence from injury to the six types of living beings i.e. Trasa & Sthāvara and not restraining of the six senses including the mind constitute the twelve kinds of non-abstinence (Avirati). Thus the non-abstinence is of twelve kinds.

Not to have due enthusiasm in performance of virtuous activities is known as negligence or 'Pramāda'. There are fifteen kinds of Pramāda (four reprehensible talks relating to gossips about women, politics, theft and food), four passions (anger, pride, deceitfulness and greed), five sensual indulgeness, sleep and passionate attachment towards mundane objects.

The passionate feelings arising in the soul as a result of passions like anger etc. are known as Kaṣāya or passions. Passions are of four kinds - anger, pride, decitfulness and greed. All the four passions are further classified in to four sub-divisions as Anantānubandhī, Apratyākhyānāvaraṇa, Pratyākhyānāvaraṇa and Saṁjvalana. Thus these are sixteen kinds of passions. Quasi-passions or No-kaṣāyas are of nine kinds - Hāsya (laughter), Rati (passionate attachment), Arati (passionate non-attachment), Śoka (sorrow), Bhaya (fear), Jugupsā (disgust), Strīveda (sexual inclination for a man), Puruṣaveda (Sexual inclination for a woman) and Napuṁṣakaveda (sexual inclination for both man and woman). Thus in all these are twenty-five kinds of passions & quasi passions.

The vibration of space-points of soul due to activities of mind, speech and body is termed as 'Yoga'. Yoga is also of fifteen kinds - four Manoyoga, four Vacana Yoga and seven Kāya Yoga.

In the case of wrong believers, all the above mentioned five are causes for bondage. Those who are 'Sāsādana' right believers, 'Samyagmithyadṛṣṭi' having mixed right & wrong faith and Samyagdṛṣṭi with vowless right faith (i.e. in second, third and fourth stages of spiritual development) have four causes for bondage, excepting the wrong faith i.e. non-abstinence, negligence, passions and Yoga. Those right believers with partial vows and great vows (in fifth and sixth stages of spiritual development) have three causes for bondage, i.e. negligence, passions and Yoga. Right believers dwelling in 'Apramatta', 'Apūrvakaraṇa', 'Anivṛttikaraṇa' & 'Sūkṣmasāmparāya' stages of spiritual development (i.e. 7^{th} to 10^{th} stages) have only passions and Yoga as causes for bondage. Those dwelling in 'Upaśānta Kaṣāya', 'Kṣīṇa Kaṣāya' and Omniscients having Yogika vibrations i.e. those in eleventh to thirteenth stages of spiritual development have only 'Yoga' as the cause for bondage. Omniscients having no Yogika vibrations in the fourteenth stage of spiritual development do not have any cause for bondage of karmas.

बन्ध का लक्षण
Characteristic of Bondage

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः।।२।।

(सकषायत्वात् जीवः कर्मणः योग्यान् पुद्गलान् आदत्ते सः बन्धः।)

Sakaṣāyatvājjīvaḥ Karmaṇo Yogyānpudgalānādatte Sa Bandhaḥ. (2)

शब्दार्थ : **सकषायत्वात्** – कषाय से सहित होने से; **जीवः** – जीव; **कर्मणः योग्यान्** – कर्म के योग्य; **पुद्गलान्** – पुद्गलों को; **आदत्ते** – ग्रहण करता है; **सः** – वह; **बन्धः** – बन्ध (है)।

Meaning of Words : **Sakaṣāyatvāt** - due to association with passions; **Jīvaḥ** - soul; **Karmaṇaḥ Yogyān** - fit to be converted as karmās; **Pudgalān** - of matter particles; **Ādatte** - assimilated; **Saḥ** - that is; **Bandhaḥ** - bondage.

सूत्रार्थ : जीव कषाय सहित होने से कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, वह बन्ध है।

English Rendering : Soul associated with passions assimilates matter particles which are fit to be converted as karmas.

टीका : सूत्र में 'कर्मणः' शब्द सूत्र को दो प्रकार से वाक्यों में विभक्त करता है। पहला वाक्य है – 'कर्मणो जीवः सकषायो भवति'। जिसका अर्थ है कि कर्म के कारण जीव कषाय सहित होता है। अर्थात् कषाय रहित जीव के कर्म बन्ध नहीं होता। अन्यथा, कर्म रहित सिद्ध जीव के भी कर्मबन्ध का प्रसंग आ जावेगा।

इससे जीव और कर्म के अनादि सम्बन्ध का भी भान होता है। इससे अमूर्त जीव का मूर्त कर्म के बन्ध का प्रश्न भी हल हो जाता है। अर्थात् जीव जब कर्मबन्ध के कारण संसारी दशा में मूर्त होता है, तभी कर्मबन्ध होता है। दूसरा वाक्य जो इस सूत्र में है वह है – 'कर्मणो योग्यान् पुद्गलान् आदत्ते' इस वाक्य में कर्म पुद्गल ही है, यह कर्म और पुद्गल शब्दों के तादात्म्य दिखलाने के लिये है। 'आदत्ते' शब्द से पुद्गल वर्गणायें जो कर्मरूप में परिणत होने की योग्यता को प्राप्त हैं, वे आत्मप्रदेशों के साथ एक क्षेत्रावगाह रूप में संश्लेष सम्बन्ध को लिये हुए हैं। अर्थात् इस सूत्र में निम्न प्रश्नों के उत्तर प्राप्त होते हैं –

१. कर्मबन्ध केवल कषाय सहित संसारी जीवों को ही होता है।

२. आत्मा और कर्मों का सम्बन्ध अनादि है।

३. कषाय के कारण कर्म और आत्मप्रदेश एक क्षेत्रावगाह होकर संश्लेष सम्बन्ध को दूध और पानी की तरह प्राप्त होते हैं।

Comments : The use of the term 'Karmaṇaḥ' in the Sūtra divides the Sūtra in two sentences, The first sentence is 'Karmaṇo Jīvaḥ Sakaṣāyo Bhavati'. It means that the living being as a result of rise of karmas gets influenced by passions. That is, there is no bondage of karmas to those who are free from passions. Otherwise the liberated beings who are free from karmas would also have bondage.

It also establishes the relationship of the living being with karma particles since begining-less times. It also solves the question how a formless soul gets bound with matter particles having form. It means that when the soul is in mundane state having form due to bondage of karmas, then alone it binds karmas. The other sentence in this Sūtra is 'Karmaṇo Yogyān Pudgalān Ādatte'. It reveals that the karmas are purely Pudgalas; this is to confirm the nature of karma particles. The use of the term 'Ādatte' is to establish that such matter particles which are capable of conversion as karmas intermingle with the space-points of the soul. In short, this Sūtra clarifires the followings points -

1. Bondage of karmas takes place only to those mundane Jīvas who possess passions.
2. The relationship of soul and karmas is since the begining-less times.
3. Because of passions, the karma particles intermingle and bond with the space-points of the soul like water & milk.

बन्ध के भेद
Kinds of Bondage

प्रकृतिस्थित्यनुभवप्रदेशास्तद्विधयः ।।३।।

(प्रकृति-स्थिति-अनुभव-प्रदेशाः तत् विधयः।)

Prakṛtisthityanubhavapradeśāstadvidhayaḥ. (3)

शब्दार्थ : **प्रकृतिस्थित्यनुभवप्रदेशाः** – प्रकृति, स्थिति, अनुभव तथा प्रदेश; **तद्विधयः** – उस (बन्ध) के भेद हैं।

Meaning of Words : **Prakṛtisthityanubhavapradeśāḥ** - nature, duration, intensity of fruition and quantity (of karma particles); **Tadvidhayaḥ** - kinds of (that) bondage.

सूत्रार्थ : प्रकृति, स्थिति, अनुभव (अनुभाग) और प्रदेश – ये उस (बन्ध) के चार भेद हैं।

English Rendering : That bondage is of four kinds - nature of karmas, duration of bondage, intensity of fruition and quantity of karma particles.

टीका : प्रकृति स्वभाव को कहते हैं। जैसे, नीम की प्रकृति कड़वी और गुड़ की प्रकृति मीठी है। कर्मों का ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि स्वभाव रूप होना प्रकृति बन्ध है। अर्थ का ज्ञान नहीं होने देना ज्ञानावरण कर्म की प्रकृति है। अर्थ का दर्शन नहीं होने देना दर्शनावरण कर्म की प्रकृति है। सुख और दुःख का अनुभव करना वेदनीय कर्म की प्रकृति है। तत्त्वों का अश्रद्धान दर्शनमोहनीय कर्म की प्रकृति है। असंयम चारित्र मोहनीय कर्म की प्रकृति है। भव को धारण कराना आयु कर्म की प्रकृति है। गति, जाति आदि नामों का देना नाम कर्म की प्रकृति है। उच्च और नीच कुल में उत्पन्न करना गोत्र कर्म की प्रकृति है। दान, लाभ आदि में विघ्न डालना अन्तराय कर्म की प्रकृति है।

आठों कर्मों का अपने-अपने स्वभाव से नियत समयसीमा तक च्युत न होकर आत्मप्रदेशों के साथ एक क्षेत्रावगाह संश्लेष सम्बन्ध बनाये रखना स्थिति बन्ध है। ज्ञानावरण आदि प्रकृतियों की तीव्र, मन्द और मध्यमरूप से फल देने की शक्ति – रस विशेष को अनुभव या अनुभाग बन्ध कहते हैं। अर्थात् कर्म पुद्गलों की अपनी-अपनी फल देने की शक्ति को अनुभव/अनुभाग कहते हैं। कर्मरूप से परिणत पुद्गल स्कन्धों के परमाणुओं की सङ्ख्या को प्रदेश बन्ध कहते हैं।

प्रकृति और प्रदेश बन्ध योग के द्वारा तथा स्थिति और अनुभव/अनुभाग बन्ध कषाय के द्वारा होते हैं। योग पहले गुणस्थान से तेरहवें गुणस्थान तक और कषाय पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक पाया जाता है। अतः स्थिति और अनुभाग बन्ध केवल दसवें गुणस्थान तक ही होता है।

Comments : 'Prakṛti' is nature. The nature of margosa (i.e. Nīma) tree is bitterness and that of molasses is sweetness. Bondage of karmas in the form of obscuring knowledge, obscuring perception etc. is the nature of bondage. Non-comprehension of objects is the nature of knowledge-obscuring karma. Non-perception of the objects is the nature of

perception obscuring karmas. Causing pleasant and unpleasant feelings is the nature of feeling producing karma. Causing dis-belief in the true nature of Reality is the nature of faith deluding karmas. Causing non-abstinence is the nature of conduct-deluding karma. To determine the life-span is the nature of age determining karma. To decide the life-course, limbs & sublimbs etc. is the nature of Nāma karma. To determine low or high status of the family is the nature of Gotra karma. To create obstructions in donation, gain etc. is the nature of obstructive karma.

The intermingled state of these eight karmas for a specific period without falling off from their nature with the space-points of the soul is duration or 'Sthiti Bandha'. The intensity of fruition of knowledge-obscuring etc. karma. in the form of intense, mild or medium intensity is 'Anubhava' or 'Anubhāga'. That is, the power of fruition of individual karmas is known as 'Anubhava'/'Anubhāga'. The number of molecules converted into karma particles is termed as space bondage i.e. 'Pradeśa Bandha'.

The nature and space bondages are due to Yoga and duration and intensity of fruition are the result of passions. Yoga is found in those living beings who dwell from first to thirteenth stages of spiritual development and passions from first to tenth stages of spiritual development. As such duration and intensity of fruition bond only up to tenth stage of spiritual development.

कर्मों की मूल प्रकृतियाँ
Main nature of Karmas

आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः।।४।।

(आद्यः ज्ञान-दर्शनावरण-वेदनीय-मोहनीय-आयुः-नाम-गोत्र-अन्तरायाः।)

Ādyo Jñānadarśanāvaraṇavedanīyamohanīyāyurnāma-gotrāntarāyāḥ. (4)

शब्दार्थ : **आद्यः** – प्रथम (मूल प्रकृति बन्ध); **ज्ञानदर्शनावरणवेदनीय-मोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः** – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय।

Meaning of Words : **Ādyaḥ** - the (first i.e. nature of bondage); **Jñānadarśanāvaraṇavedanīyamohanīyāyurnāmagotrāntarāyāḥ** - knowledge obscuring, perception obscuring, feeling, deluding, age determining, physique making, family status determining karma and obstructive karma.

सूत्रार्थ : ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय रूप कर्म प्रथम प्रकृति बन्ध है।

English Rendering : Knowledge obscuring, perception obscuring, feeling, deluding, age-determining, physique making, family status determining and obstructive karmas are kinds of the first kind of bondage of karmas i.e. nature of bondage.

टीका : सूत्र तीन में कर्म बन्ध के चार प्रकार बताये गये हैं। उनमें पहला भेद प्रकृति बन्ध है। उस प्रकृति बन्ध के ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय रूप आठ भेदों का उल्लेख इस सूत्र में किया गया है। सूत्र तीन की टीका में प्रकृति बन्ध की परिभाषा के साथ इन आठ कर्मों की संक्षिप्त व्याख्या भी दी गई है।

आत्मा के सर्व गुणों में ज्ञान गुण पूज्य एवं प्रधान है। इसलिये सर्वप्रथम ज्ञान को रखा है। ज्ञान के बाद दर्शन को रखा है। तत्पश्चात् वेदनीय कर्म को रखा है, क्योंकि वेदनीय कर्म मोहनीय कर्म के बल से ही घातिया कर्मों के समान जीव के गुणों को घातता है। इसलिये इसे मोहनीय के पहले कहा है। वेदनीय कर्म मोहनीय के बल से गुणों को घातता है, अतः वेदनीय के बाद मोहनीय को रखा है।

आयु कर्म के निमित्त से भव की स्थिति होती है। इसलिये नाम कर्म से पूर्व आयु कर्म को कहा है और भव के आश्रय से ही नीचपना या उच्चपना होता है, इसलिये नाम कर्म को गोत्र कर्म के पहले कहा है।

जीव के गुणों को घात करने वाले अर्थात् गुणों को ढकने वाले या विकृत करने वाले ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय – इन चार कर्मों को घातिया कर्म कहते हैं। जो जीव के गुणों को घात नहीं करते परन्तु जो बाह्य शरीर आदि से सम्बन्धित आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय – ये चार अघातिया कर्म हैं।

अन्तराय कर्म यद्यपि घातिया है किन्तु अघातिया कर्मों के समान जीव के गुणों को पूर्ण रूप से घातने में समर्थ नहीं है। नाम, गोत्र और वेदनीय के निमित्त से ही अन्तराय कर्म अपना कार्य करता है। इसलिये अन्तराय कर्म को अघातिया कर्मों के अन्त में कहा है।

Comments : Under comments of Sūtra 3 four kinds of bondage of karmas have been described. Out of them, the first kind is nature-bondage. In this Sūtra, the eight kinds of nature-bondage - i.e. knowledge obscuring, perception obscuring, feeling producing, deluding, age determinging, physique determining, status of family determining and obstructive are stated. Under the comments of Sūtra 3, a brief definition of the nature-bondage together with brief description of these eight karmas has been given.

Amongst all the attributes of a soul, knowledge attribute is the most venerable as well as of the prime importance. Therefore first of all, knowledge is mentioned. After knowledge, perception is kept. Thereafter, feeling producing karma is kept because feeling producing karma with the force of deluding karma obscures natural attributes of a soul like Destructive (Ghātiyā) karmas. Therefore, it is placed prior to deluding karma. As feeling producing karma obscures with the force of deluding karma, the virtues of the soul, it is placed after the feeling producing karma.

The life-course is determined in association with the age-determining karma and therefore age determining karma is placed prior to the physique determining karma (Nāma Karma). With the support of life-course determination, status of family-low or high is decided and therefore physique determining karma is kept prior to the family status determining karma.

The karmas which adversely affect, obscure or cover the natural attributes of soul, i.e. knowledge obscuring, perception obscuring, deluding and obstructive karmas - all four as a group are known as Ghātiyā i.e. destructive karmas. Those which do not adversely affect the natural attributes of the soul but adversely affect physique etc. are known as 'Aghātiyā', i.e. non-destructive karmas. Age determining, physique determining, family status determining and feeling producing karma as a group are known as 'Aghātiyā'.

Although obstructive karma is grouped amongst destructive karmas but it is not capable of completely obsuring the attributes of the soul. These only cause harm in association with physique determining, status determining and feeling producing karmas, therefore, obstructive karma is placed at the last after Aghātiyā karmas.

मूल प्रकृति बन्ध के भेद

Sub-kinds of Nature binding Karmas

पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम्।।५।।

(पञ्च-नव-द्वि-अष्टाविंशति-चतुः-द्वि-चत्वारिंशत्-द्वि-पञ्चभेदाः यथाक्रमम्।)

Pañcanavadvyaṣṭāviṁśaticaturdvicatvariṁśaddvi-pañcabhedā Yathākramam. (5)

शब्दार्थ : **पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपञ्चभेदाः** – पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, बयालीस, दो और पाँच भेद हैं; **यथाक्रमम्** – क्रम से।

Meaning of Words : **Pañcanavadvyaṣṭāviṁśaticatur-dvicatvariṁśaddvipañcabhedāḥ** - five, nine, two, twenty-eight, four, forty-two, two and five kinds; **Yathākramam** - respectively.

सूत्रार्थ : पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, बयालीस, दो और पाँच – ये क्रमशः ज्ञानावरण आदि कर्मों के भेद हैं।

English Rendering : Five, nine, two, twenty-eight, four, forty-two, two and five respectively are kinds of knowledge etc obscuring karma.

टीका : ज्ञानावरणीय कर्म के पाँच भेद, दर्शनावरणीय के नौ भेद, वेदनीय के दो भेद, मोहनीय के अट्ठाईस, आयु के चार, नाम के बयालीस, गोत्र के दो और अन्तराय के पाँच भेद हैं। इनका वर्णन अगले सूत्रों में किया जाएगा।

Comments : Knowledge obscuring karma is of five kinds, perception obscuring is of nine kinds, feeling producing is of two kinds, deluding is of twenty-eight kinds, age-determining is of four kinds, physique determining is of forty-two kinds, status determining is of two kinds and obstructive karma is of five kinds. These are being described in the following Sūtras.

ज्ञानावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ

Sub-division of Knowledge-obscuring Karma

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम्।।६।।

(मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय-केवलानाम्।)

Matiśrutāvadhimanaḥparyayakevalānām. (6)

शब्दार्थ : **मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् –** मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल (ज्ञानों) को (आवरित करने वाले)।

Meaning of Words : **Matiśrutāvadhimanaḥparyayakevalānām** - sensory, scriptural, clairvoyance, mind-reading and omniscience - those (karmas) which obscure these knowledges.

सूत्रार्थ : मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानरूप – ये पाँच ज्ञान हैं। इनको आवरित करने वाले होने से पाँच ज्ञानावरण कर्म के भेद होते हैं।

English Rendering : Knowledge is of five types i.e. sensory, scriptural, clairvoyance, mind reading and omniscience. As these obscure the knowledge obscuring karma, the five types are sub divisions.

टीका : जो मतिज्ञान का आवरण करता है, वह मतिज्ञानावरण कर्म है। श्रुतज्ञान का आवरण करने वाला श्रुतज्ञानावरण कर्म है। अवधिज्ञान का आवरण करने वाला अवधिज्ञानावरण कर्म है। मनःपर्ययज्ञान का आवरण करने वाला मनःपर्ययज्ञानावरण कर्म है और केवलज्ञान का आवरण करने वाला केवलज्ञानावरण कर्म है।

मतिज्ञान मन और इन्द्रियों की सहायता से सभी जीवों को अपने क्षयोपशम के अनुरूप थोड़ा या बहुत होता है। जो कर्म इस ज्ञान का आवरण करते हैं, वह मतिज्ञानावरणीय कर्म कहलाता है।

श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के उदय में जीव न शास्त्र को ही समझता है और न उसमें प्रतिपाद्य अर्थ को। अन्य अवस्था में प्राणी ग्रन्थ और विषयार्थ को समझकर भी इस कर्म के उदय में दूसरे को ठीक प्रकार से नहीं समझा पाता है।

अवधिज्ञानावरणीय कर्म के फलस्वरूप जीव को क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान नहीं हो पाता। जब जीव के परिणाम क्रोध आदि कुभावों से संक्लिष्ट होते हैं तब कर्मों के क्षयोपशम आदि विलीन हो जाते हैं। फलतः अवधिज्ञान का भी लोप हो जाता है।

ऋजु एवं कुटिल – दोनों प्रकार की मानसिक चेष्टाओं को जानने में समर्थ चेतना शक्ति को ढकने वाला कारण मनःपर्ययज्ञानावरणीय है। ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म का फल होता है कि साधक योजन पृथक्त्व (यानी तीन से अधिक और नौ योजन के भीतर) में स्थित प्राणियों के मन में उठने वाले सङ्कल्प–विकल्पों को जानने में भी समर्थ नहीं होता है। विपुलमति मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म के कारण साधक ढाई द्वीप

में रहने वाले प्राणियों के हृदय में उठने वाले विचारों और भावों को भी नहीं जान सकता है। यह क्षेत्र की अपेक्षा कथन है। काल की अपेक्षा भी कम से कम दो-तीन भवों की बातों को और अधिक से अधिक असंख्यात भवों में घटी बातों को जानने में असमर्थ होना भी मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म का आवरण पड़ जाने से होता है।

आत्मा की वह विशेष योग्यता, जिसके द्वारा यह समस्त द्रव्यों के स्वभाव और पर्यायों को तीनों लोकों और तीनों कालों में युगपत् जानता है, उस असाधारण चैतन्य स्वरूप को केवलज्ञानावरणीय कर्म पूर्ण रूप से ढक लेता है।

मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण और मनःपर्ययज्ञानावरण कर्म पूर्ण या आंशिक रूप से ज्ञान का आवरण करते हैं, लेकिन केवलज्ञानावरण पूर्ण रूप से ही ज्ञान का आवरण करता है। केवलज्ञान प्रकट होने के लिये घातिया कर्मों का बारहवें गुणस्थान के अन्त में क्षय होना आवश्यक है। मति और श्रुतज्ञान तो सभी छद्मस्थ जीवों में कम या अधिक मात्रा में पाया जाता है। अवधिज्ञान भी जीवों को पहले गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक रह सकता है। मनःपर्ययज्ञान का उपयोग प्रमत्तसंयत गुणस्थानवाले विशिष्ट मुनियों में ही पाया जाता है। स्वामी की अपेक्षा यह ज्ञान प्रमत्तसंयत गुणस्थान से क्षीणकषाय बारहवें गुणस्थान तक के जीवों को हो सकता है।

Comments : That which obscures the sensory knowledge is sensory knowledge obscuring karma. That which obscures the scriptural knowledge is the scriptural knowledge obscures karma. That which obscures the clairvoyance knowledge is the clairvoyance knowledge obscuring karma. That which obscures the mind-reading knowledge is the mind-reading-knowledge obscuring karma and that which obscures the omniscience is the omniscience obscuring karma.

Sensory knowledge gained with the help of mind and senses manifests more or less depending on one's rise of destructive-cum-subsidence of karmas to all Chadmastha living beings. The karma which obscures sensory knowledge is known as sensory knowledge obscuring karma.

On rise of scriptural knowledge obscuring karma, a living being becomes incapable to understand scriptures and the meaning imparted by them. In other case, even when one understands the meaning of the scriptures, he is unable to explain the same to others due to rise of scriptural knowledge obscuring karma.

As a result of rise of clairvoyance obscuring karma, the living being becomes unable to attain the destructive-cum-subsidence type of clairvoyance knowledge. As & when the volitions of a living being are engulfed with anger etc. passions, the rise of destructive-cum-subsidence of karmas get adversely affected and as a result, the clairvoyance knowledge is also departs.

The karma which obscures vitality of conscience of knowing both simple and intricate thought-activity is mind-reading knowledge obscuring karma. The result of rise of simple sensory mind-reading-knowledge obscuring karma is that a saint is not even able to know the thought activities of a person located at a distance of more than three Yojana but less than nine Yojana. The result of rise of complex mind-reading knowledge obscuring karma is that the saint is not able to know the thought-activity of another person located in two & half continents. This statement is in relation to the Kṣetra, i.e. area. As regards the affect of Kāla (time), the saint becomes unable to know about the happenings of at least two or three life-courses and also maximum of in-numerable life courses due to rise of mind-reading knowledge obscuring karma.

That unique vitality of soul which makes the soul know the nature of all substances of all the three worlds and of all the three times simultaneously is completely obscured by the rise of omniscience obscuring karma.

Sensory knowledge obscuring karma, scriptural knowledge obscuring karma, clairvoyance obscuring karma and mind-reading-knowledge obscuring karma obscure the corresponding knowledge either completely or partially but omniscience obscuring karma covers knowledge completely. For rise of omniscience, it is necessary that all the destructive karmas are destroyed completely at the end of twelfth stage of spiritual development. Sensory and scriptural knowledge are found in less or more degree in all Chadmastha living beings. Clairvoyance can also manifest and exist in living beings dwelling from first to twelth stage of spiritual development. The application of mind-reading-knowledge is found only by erudite monks dwelling in non-vigilantly restrained (Pramatta) stage of spiritual development. This knowledge can be possessed by monks dwelling from sixth stage to twelfth stage of spiritual development i.e. from Pramatta to Kṣīṇa Guṇasthāna.

दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ
Sub-division of Perception-deluding Karma

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचला–
प्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च।।७।।

(चक्षुः–अचक्षुः–अवधि–केवलानां निद्रा–निद्रानिद्रा–प्रचला–
प्रचलाप्रचला–स्त्यानगृद्धयः च।)

Cakṣuracakṣuravadhikevalānāṁ Nidrānidrānidrā-
pracalāpracalāpracalāstyānagṛddhayaśca. (7)

शब्दार्थ : **चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानाम्** – चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवलों (दर्शनों) का; **निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च** – निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि का।

Meaning of Words : **Cakṣuracakṣuravadhikevalānām-** of ocular perception, non-ocular perception, clairvoyance perception, Omni-perception; **Nidrānidrānidrāpracalāpracalāpracalāstyānagṛddhayśca** - of sleep, deep sleep, drowsiness, heavydrowsiness and somnambulism (committing cruel unexpected deeds in sleep).

सूत्रार्थ : चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन – इन चारों के चार आवरण तथा निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि – (पाँच निद्रा आदिक भेद से) दर्शनावरण कर्म के नौ भेद हैं।

English Rendering : The four karmas which obscure ocular perception, non-ocular perception, clairvoyance perception, omni-perception and (five, kinds of sleeps) sleep, deep sleep, drowsiness, heavy drowsiness and somnambulism are nine kinds of perception deluding karma.

टीका : वस्तु के आकार–प्रकार को ग्रहण न करके जो मात्र सामान्य अवलोकन होता है, वह 'दर्शन' कहलाता है। इस प्रकार के दर्शन में जो कर्म आवरण डालता है, उसे दर्शनावरण कर्म कहते हैं। उसके उत्तर भेदों का यहाँ कथन है। जो कर्म चक्षु इन्द्रिय द्वारा सामान्य अवलोकन न होने देता है, उसे चक्षुदर्शनावरण कहते हैं। जो कर्म चक्षु इन्द्रिय के अतिरिक्त शेष अन्य इन्द्रियों और मन के द्वारा सामान्य अवलोकन न

होने दे, उसे अचक्षुदर्शनावरण कर्म कहते हैं। जो कर्म अवधिज्ञान के पूर्व सामान्य अवलोकन न होने दे, उसे अवधिदर्शनावरण कर्म कहते हैं। जो कर्म केवलज्ञान के साथ होने वाले सामान्य अवलोकन को न होने दे, उसे केवलदर्शनावरण कर्म कहते हैं। छद्मस्थ जीवों के ज्ञान से पहले दर्शन होता है, लेकिन सर्वज्ञ होने पर केवलज्ञान और केवलदर्शन युगपत् होते हैं।

इनके अतिरिक्त जो अन्य कारण दर्शनावरण कर्म के हैं, वे हैं – निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि। मद, खेल और परिश्रमजन्य थकावट को दूर करने के लिये विश्राम के लिये सोना निद्रा है। इसमें आत्मा कुत्सित कार्य करता है, स्वप्न में क्रिया करता है। दर्शनावरणीय कर्म के उदय से ज्ञान ज्योति का अस्त हो जाना निद्रा है। निद्रा में जीव अल्पकाल सोता है, उठाये जाने पर जल्दी उठ बैठता है और अल्प शब्द के साथ सचेत हो जाता है।

जिस प्रकृति के उदय से अतिनिर्भय होकर सोता है और दूसरे के द्वारा उठाये जाने पर भी नहीं उठता है, वह निद्रानिद्रा प्रकृति है। निद्रानिद्रा में जीव वृक्ष के शिखर पर, विषमभूमि पर भी गाढ़ निद्रा में सोता है। जो आत्मा को प्रचलित करती हो, वह प्रचला है। यह शोक आदि से उत्पन्न होती है। इसमें जीव नेत्र को किञ्चित् खोलकर सोता है। सोते हुए भी कुछ-कुछ जानता रहता है, बार-बार सोता और जागता रहता है। प्रचला की पुनः-पुनः आवृत्ति होना प्रचलाप्रचला है। इसमें सोते हुए लार बहे तथा अङ्ग चले, उसे प्रचलाप्रचला कहते हैं।

जिस निद्रा के उदय में जीव चलता-चलता स्तम्भ के समान खड़ा रहता है, खड़ा-खड़ा ही बैठ जाता है, सोता हुआ ही मार्ग में चलने लगता है, मारता है, काटता है और बड़बड़ाता है, वह स्त्यानगृद्धि है। इसमें मानव अनेक रौद्र कर्म एवं असम्भव कार्य भी कर डालता है।

Comments : The simple form-less perception just prior to the detailed knowledge is known as 'Darśana' or perception. The karma which obscures acquisition of such perception is the perception obscuring karma. Here its sub-divisions are stated. The karma which prevents general perception by eyes is known as ocular perception obscuring karma. The karma which does not allow general perception with the help of other sense organs except eyes and through mind is known as non-ocular perception obscuring karma. The karma which

does not allow general perception prior to clairvoyance is known as clairvoyance perception obscuring karma. Similarly, the karma which does not allow general perception to occur simultaneously along with manifestation of omniscience is known as omniscience-perception obscuring karma. The mundane beings dwelling up to twelfth stage of spiritual development (Chadmastha) acquire perception prior to the manifestation of corresponding knowledge but omniscience and omni-perception manifest simultaneously.

Apart from the above the other causes of perception obscuring karma are sleep, deep sleep, drowsiness, deep drowsiness and somnambulism. Sleep is intended to remove the effect of intoxication, distress and weariness from exertion or strain. In the sleep are performance disqusting acts; Dreams are action oriental Sleep is extinction of the flame of knowledge as a result of rise of perception obscuring karma. Sleep causes the one to sleep for a short period and he gets up quickly when waked up and becomes conscious by a few words.

The rise of karmic nature which causes deep fearless sleep to a person and does not allow him to get up even when asked for it, is known as deep-sleep (Nidrānidrā). In deep sleep, one may sleep on the top of the tree and on uneven ground. That one which prevails a soul to have drowsiness is 'Pracalā'. It's cause is sorrow etc. In this one sleeps with eyes slightly open, one continues to have some awareness even while sleeping, sleeps and remains awake frequently. Recurrence of 'Pracalā' is deep drowsiness i.e. 'Pracalāpracalā'. In this during sleep one slobbers and moves his body limbs.

While sleeping, rise of which one stands like a pillar while walking, sits while standing, starts moving on a path, beats, bites and murmurs, is known as somnambulism i.e. 'Styānagṛddhi'. Under the influence of this, a person could perform several kinds of horrible and impossible acts.

वेदनीय कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ
Sub-division of Feeling Producing Karma

सदसद्वेद्ये।।८।।

(सत्–असत्–वेद्ये।)

Sadasadvedye. (8)

शब्दार्थ : **सत्** – प्रशस्त; **असत्** – अप्रशस्त; **वेद्ये** – दो वेदनीय (कर्म हैं)।

Meaning of Words : **Sat** - auspicious feeling; **Asat** - inauspicious feeling; **Vedye** - are two feeling producing karmas.

सूत्रार्थ : साता वेदनीय और असाता वेदनीय के भेद से वेदनीय कर्म के दो भेद हैं।

English Rendering : Feeling producing karma is of two kinds - pleasant feeling producing and unpleasant feeling producing.

टीका : जिस कर्म के उदय से जीव सुख–दुःख का वेदन अर्थात् अनुभव करता है, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। जिस कर्म के उदय से देव आदि गतियों में शरीर और मन सम्बन्धी सुख की प्राप्ति होती है, वह साता वेदनीय है। जिससे शारीरिक एवं मानसिक अनेक प्रकार के दुःखों की प्राप्ति हो, वह असाता वेदनीय प्रकृति है।

Comments : The rise of the karma which causes one to feel pleasure and pain is known as feeling producing karma. On the rise of this karma, when one gets sensuous and mental pleasures in the celestials and other stages of existence, it is known as auspicious feeling producing karma. The rise of the karma which causes sensuous & mental sufferings of many kinds, is called inauspicious feeling producing karma.

मोहनीय कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ
Sub-division of Deluding Karma

दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोक–भयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसकवेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान–सञ्ज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः॥९॥

(दर्शन–चारित्र–मोहनीय–अकषाय–कषाय–वेदनीय–आख्याः त्रि–द्वि–नव–षोडश–भेदाः सम्यक्त्व–मिथ्यात्व–तत्–उभयानि अकषाय–कषायौ हास्य–रति–अरति–शोक–भय–जुगुप्सा–स्त्री–पुं–नपुंसक–वेदाः अनन्तानुबन्धी–अप्रत्याख्यान–प्रत्याख्यान–सञ्ज्वलन–विकल्पाः च एकशः क्रोध–मान–माया–लोभाः।)

Darśanacāritramohanīyākaṣāyakaṣāyavedanīyākhyastri-dvinavaṣoḍaśabhedāḥ Samyaktvamithyātvatadubhayānya-kaṣāyakaṣāyau Hāsyaratyaratiśokabhayajugupsāstrīpunnapuṁsa-kaveda Anantanubandhyapratyakhyānapratyākhyānasañjvala-navikalpāscaikaśaḥ Krodhamānamāyālobhāḥ. (9)

शब्दार्थ : **दर्शनचारित्रमोहनीय–** दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय; **अकषायकषायवेदनीयाख्याः –** अकषाय (नो कषाय) वेदनीय और कषाय वेदनीय कही हैं; **त्रिद्विनवषोडशभेदाः –** (इनके क्रमशः) तीन, दो, नौ, सोलह भेद (होते हैं); **सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयानि –** सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और तद्–उभय (सम्यग्मिथ्यात्व); **अकषायकषायौ –** अकषाय और कषाय (क्रमशः); **हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सा–स्त्रीपुन्नपुंसकवेदाः –** हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुं वेद एवं नपुंसक वेद (नो–कषाय हैं); **अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसञ्ज्वलन–विकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः –** अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान (आवरण), प्रत्याख्यान (आवरण) और सञ्ज्वलन कषायों में प्रत्येक क्रोध, मान, माया, लोभ रूप हैं। (कुल सोलह प्रकार कषाय के हैं)।

Meaning of Words : **Darśanacāritramohanīya -** Faith deluding and conduct deluding karma; **Ākaṣāyakaṣāyavedanīyākhyāḥ -** Nokaṣāya (i.e. Quasi-passions) and passion feelings are stated; **Tri-dvinavaṣoḍaśabhedāḥ** - three, two, nine and sixteen are kinds respectively; **Samyaktvamithyātvatadubhayāni -** Right Faith, wrong faith and mixed faith i.e. Right & Wrong Faith; **Akaṣāyakaṣāyau -** quasi passions & passions (respectively); **Hāsyaratyaratiśokabhayajugupsāstrī-punnapuṁsakavedāḥ -** laughter producing, indulgence, dis-satisfaction, sorrow, fear, disgust, feminine sexual inclination, masculine sexual inclination, neutral inclination are nine sub-types of quasi-passions; **Anantanubandhyapratyakhyānapratyākhyānasañjvalanavikalpā-ścaikaśaḥ Krodhamānamāyālobhāḥ** - passions are of four kinds - Anantānubandhī, Apratyākhyāna (āvaraṇa), Pratyākhyāna (āvaraṇa) and Sañjvalana each of four kinds e.g. anger, pride, deceitfulness & greed (i.e. in all sixteen types).

सूत्रार्थ : दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय, अकषाय वेदनीय और कषाय वेदनीय – इनके क्रमशः तीन, दो, नौ और सोलह भेद हैं। सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व – ये दर्शनमोहनीय के तीन भेद हैं। चारित्रमोहनीय के दो भेद – कषाय वेदनीय और अकषाय वेदनीय हैं। अकषाय वेदनीय के नौ भेद हैं – हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुं वेद और नपुंसक वेद। कषाय वेदनीय के अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और सञ्ज्वलन – क्रोध, मान, माया एवं लोभ रूप ये चार भेद प्रत्येक के होने से सोलह भेद हैं।

English Rendering : Faith deluding, conduct deluding, quasi-passions and passions are of three, two, nine and sixteen kinds respectively. Right Faith, Wrong Faith and mixed Faith i.e. both Right & Wrong Faith are three kinds of faith deluding karma. Conduct deluding karma is of two types - quasi-passion-feelings and passion- feelings. Quasi-passions are of nine kinds - laughter producing, indulgence, dis-satisfaction, sorrow, fear, disgust, feminine sexual inclination, masculine sexual inclination & neutral sexual inclination. Passion-feeling are of four kinds - Anantānubandhī, Apratyākhyānāvaraṇa, Pratyākhyānāvaraṇa & Sañjvalana each is of anger, pride, deceitfulness and greed - i.e. in all sixteen kinds.

टीका : बन्ध की अपेक्षा दर्शनमोहनीय एकभेद रूप ही है, लेकिन सत्ता की अपेक्षा उसके तीन भेद हो जाते हैं। जिसके उदय होने पर आत्मा में शुभ परिणामों से मिथ्यात्व की फल देने की शक्ति रुक जाने से मिथ्यात्व उदासीन रूप से उपस्थित तो रहता है, परन्तु सम्यक् श्रद्धान में रुकावट नहीं डाल सकता, अपितु उसमें चल, मल आदि दोष लगा सकता है। दर्शनमोहनीय की इस अवस्था का नाम सम्यक्त्वदर्शनमोहनीय है। जिसके उदय से सर्वज्ञ प्रणीत मार्ग से विमुख मोक्षमार्ग के हेतुपरक तत्त्वों पर यथार्थ श्रद्धान न हो और जो हिताहित का विचार न करने दे, उसे मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय कहते हैं। मिथ्यात्व और सम्यक्त्व की मिलीजुली अवस्था – सम्यग्मिथ्यात्व के उदय में मिश्र रूप परिणाम होते हैं।

चारित्र मोहनीय दो प्रकार का है – अकषाय वेदनीय और कषाय वेदनीय (इसमें प्रयुक्त हुआ वेदनीय शब्द वेदन यानी अनुभव करने का वाचक है। यह वेदनीय नामक

कर्म रूप नहीं है)। यहाँ ईषत् अर्थात् किञ्चित् अर्थ में प्रयोग होने से किञ्चित् कषाय को अकषाय कहा है। इसके हास्य आदि नौ भेद हैं। जिसके उदय में हँसने के परिणाम हों, वह हास्य अकषाय चारित्र मोहनीय है। जिसके उदय में रति अर्थात् आनन्द देने वाले भाव हों, वह रति अकषाय चारित्र मोहनीय है। रति के विपरीत इच्छा होना अरति अकषाय चारित्र मोहनीय है। जिसके उदय में शोक या चिन्ता हो, वह शोक अकषाय चारित्र मोहनीय है। जिसके उदय में उद्वेग, त्रास या भय उत्पन्न हो, वह भय अकषाय चारित्र मोहनीय है। जिसके उदय से जीव अपने दोषों को छुपाता हो और दूसरे के दोषों को प्रकट करता हो, वह जुगुप्सा अकषाय चारित्र मोहनीय है। जिसके उदय से स्त्री रूप परिणाम हों, वह स्त्री वेद है। जिसके उदय से पुरुष रूप परिणाम हों, वह पुं वेद है और जिसके उदय से स्त्री और पुरुष रूप दोनों परिणाम हों, वह नपुंसक वेद है। ये अकषाय वेदनीय नामक चारित्र मोहनीय के भेद हैं।

अनन्तानुबन्धी आदि के विकल्प से कषाय वेदनीय चारित्र मोहनीय कर्म के सोलह भेद हैं। यथा – क्रोध, मान, माया और लोभ – ये चार कषाय हैं। इनकी चार अवस्थाएँ हैं – अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और सञ्ज्वलन। अनन्त संसार का कारण होने से मिथ्यादर्शन को अनन्त कहते हैं। जो मिथ्यात्व के अनुबन्धी यानी बन्ध के कारण होते हैं वे क्रोध, मान, माया, लोभ रूप चार भेद अनन्तानुबन्धी के हैं। इस कषाय के उदय में जीव सम्यग्दर्शन को प्राप्त नहीं कर सकता। जिनके उदय में जीव संयमासंयम रूप श्रावक के व्रतों का पालन नहीं कर सकता, वे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ हैं। जिनके उदय में जीव महाव्रतों का पालन करने में असमर्थ होता है, वे प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ हैं तथा जिनके उदय में जीव यथाख्यात चारित्र को प्राप्त नहीं होता, सञ्ज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ हैं। इनके संयम के साथ अवस्थान होने में एक होकर जो ज्वलित होते हैं अर्थात् चमकते हैं या जिनके सद्भाव में संयम चमकता रहता है, वे सञ्ज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय हैं।

Comments : In the context of bondage, faith-deluding karma is only of one kind but it gets trifurcated with reference to its existence. The state which enables manifestation of auspicious volitions of the soul as a result of subsidence of the power of fruition of the wrong faith karma, although it remains in existence but can not create obstructions in one's right belief. It may cause unsteadiness, infirming etc. blemishes in respect of nature of Realities. Such a state of faith

deluding karma is known as 'Samyaktva Darśana Mohanīya'. That rise of karma which causes belief contrary to the one preached by omniscient for path of salvation and which does not allow one to have true belief of the nature of Realities and does not allow discrimination as to what is good or bad for one's emancaption, is known as 'Mithyatva Darśana Mohanīya'. The mixed state of 'Mithyātva' and 'Samyaktva' which causes mixed volitions is known as 'Samyagmithyātva'.

Conduct deluding karma is of two kinds - Akaṣāya Vedanīya i.e. quasi-passion conduct deluding and Kaṣāya Vedanīya i.e. passional conduct deluding. (here the use of term 'Vedanīya is to indicate feelings and has no connection with Vedanīya karma). Here 'Akaṣāya' term is used because a passions are of mild nature i.e. quasi-passions. These are of nine kinds e.g. laughing etc. That rise of which causes volitions of laughter is known as laughter passion. That rise of which causes liking i.e. pleasure feelings, is known as 'Rati Akaṣāya conduct deluding karma'. That rise of which causes feelings contrary to the liking i.e. or aversion feeling is known as 'Arati Akaṣāya conduct deluding karma'. That rise of which causes sorrow or anxiety is known as 'Śoka Akaṣāya conduct deluding karma'. That which causes agitation, awe or fear is known as 'Bhaya Akaṣāya conduct deluding karma'. That rise of which causes one to hide his infirmities and to publicise otherś faults is known as 'Jugupsā'. That which causes volitions like a woman is 'Strī Veda'. That which causes volitions like a man is 'Puṁ Veda' That which causes volitions like a man & woman is 'Napuṁsaka Veda'. These nine are the kinds of quasi-passion conduct deluding karma.

Passion conduct deluding karma is of sixteen kinds - Anantānubandhī etc. For example four passions are anger, pride, decitfulness and greed. These have four stages - Anantānubandhī, Apratyākhyānāvaraṇa, Pratyākhyānāvaraṇa, and Sañjvalana. As wrongfaith is the cause of infinite wandering, it is termed as 'Ananta'. Those which are causes for bondage of wrong faith i.e. anger, pride, deceitfulness and greed - all four are kinds of Anantānubandhī. Rise of this kind of passion

does not allow one to attain right faith. The rise of which does not allow one to undertake vows of a house holder i.e. Saṁyamāsaṁyama are anger, pride, deceitfulness and greed of Apratyākhyānāvaraṇa type. That which does not allow one to practise Great Vows are anger, pride, decietfulness and greed of Pratyākhyānāvaraṇa type and that which does not allow manifestation of 'Yathākhyāta' conduct are anger, pride, decitfulness and greed of 'Sañjvalana' type. In Sañjvalana type of passions, the conduct of an ascetic continues to glitter.

आयु कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ
Sub-division of Age-Determing Karma

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि।।१०।।

(नारक-तैर्यग्योन-मानुष-दैवानि।)

Nārakatairyagyonamānuṣadaivāni. (10)

शब्दार्थ : **नारक** – नारक आयु; **तैर्यग्योन** – तिर्यञ्च आयु; **मानुष** – मनुष्य आयु; **दैवानि** – देव आयु।

Meaning of Words : **Nāraka** - age of hellish beings; **Tairyagyona-** age of Tiryañcas. **Mānuṣa** - age of human beings; **Daivāni** - age of celestial beings.

सूत्रार्थ : नारक, तैर्यग्योन, मानुष और दैव – ये चार आयु कर्म हैं।

English Rendering : The four age determining karmas are age of hellish-beings, age of Tiryañcas, age of human beings and age of celestial beings.

टीका : जिसके निमित्त से तीव्र शीत-उष्ण वेदनाकारक नरकों में दीर्घकाल तक प्राणी भव धारण करता है, वह नरक आयु-कर्म है। प्राणी तिर्यञ्च आयु-कर्म के उदय

से त्रस एवं स्थावर भेद रूप तिर्यञ्च गति में उत्पन्न होकर केवल दुःख ही दुःख भोगता है, वह तैर्यग्योन यानी तिर्यञ्च आयु में भव धारण करना है। इसके उदय से क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक आदि अनेक दुःखों को सहन करता हुआ जीव जीवित रहता है। जिसके उदय से प्राणी को शारीरिक, मानसिक आदि सुख-दुःख रूपी मनुष्य भव धारण करना पड़ता है, वह मानुष आयु-कर्म है। जिसके उदय से शारीरिक और मानसिक सुख प्राप्त कर दीर्घकाल तक देव भव में रहने का आनन्द मिलता है, वह देव आयु-कर्म है।

Comments : That which causes a Jīva to live a long span of life in the infernal regions where there is intense heat and cold, is infernal age determining karma. On rise of Tiryañca age determining karma, one takes birth as either a mobile or an immobile being and undergoes extreme sufferings. It is the life span of Tiryañca during the rise of which a Jīva suffers pain due to hunger, thirst, cold, heat, bite of mosquitoes etc. Due to the rise of which a living being undergoes several kinds of physical and mental pain and pleasure in the life span of a human being is the human life determining karma. That rise of which causes physical and mental pleasure for a very long time is the result of the rise of celestial age determining karma.

नाम कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ

Sub-divisions of Nāma Karma

गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसङ्घातसंस्थानसंहननस्पर्श-रसगन्धवर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वास-विहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्ति-स्थिरादेययशःकीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च ।।११।।

(गति-जाति-शरीर-अङ्गोपाङ्ग-निर्माण-बन्धन-सङ्घात-संस्थान-संहनन-स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-आनुपूर्व्य-अगुरुलघु-उपघात-परघात-आतप-उद्योत-उच्छ्वास-विहायोगतयः प्रत्येकशरीर-त्रस-सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्म-पर्याप्ति-स्थिर-आदेय-यशःकीर्ति-स-इतराणि तीर्थकरत्वं च ।)

Gatijātiśarīraṅgopaṅganirmāṇabandhana-saṅghātasaṁsthānasaṁhananasparśarasagandha-varṇānupūrvyāgurulaghūpaghātaparaghātātapo-dyotocchvāsavihāyogatayaḥ Pratyekaśarīratrasa-subhagasusvaraśubhasūkṣmaparyāptisthirādeya-yaśaḥkīrtisetarāṇi Tīrthakaratvaṁ Ca. (11)

शब्दार्थ : **गति** – जिसके उदय से आत्मा भवान्तर को जाता है।

जाति – गतियों में जिस अव्यभिचारी सादृश्य से एकपने रूप अर्थ का बोध होना।

शरीर – जिसके उदय से आत्मा के लिये शरीर की रचना होती है।

अङ्गोपाङ्ग – जिसके उदय से अङ्ग और उपाङ्ग की स्पष्ट रचना या भेद होता है।

निर्माण – जाति नाम कर्म के उदय होने पर जिससे चक्षु आदि अवयवों का स्थान एवं प्रमाण की परिनिष्पत्ति यानी रचना होती है।

बन्धन – शरीर नाम कर्म के उदय से प्राप्त पुद्गल स्कन्धों का परस्पर प्रदेश संश्लेष जिसके निमित्त से होता है।

सङ्घात – औदारिक आदि शरीरों के प्रदेशों का परस्पर छिद्र रहित प्रवेश–अनुप्रवेश होकर एक रूप हो जाना।

संस्थान – जिसके उदय से औदारिक आदि शरीरों की आकृति बनती है।

संहनन – जिसके उदय से हड्डियों का बन्धन विशेष होता है।

स्पर्श – जिसके उदय से जीव के शरीर में जाति के अनुरूप स्पर्श उत्पन्न होता है।

रस – जिसके उदय से तिक्त आदि रस उत्पन्न या भेद को प्राप्त होते हैं।

गन्ध – जिसके उदय से शरीर में गन्ध उत्पन्न होती है।

वर्ण – जिसके उदय से वर्ण में विभाग होता है।

आनुपूर्व्य – जिसके उदय से विग्रहगति में पूर्व शरीर का आकार बना रहता है।

अगुरुलघु – जिन कर्म स्कन्धों के द्वारा न लोह पिण्ड के समान भारी होकर नीचे गिरता है और न रुई के समान हल्का होकर ऊपर उड़ता है।

उपघात –जिसके उदय से स्वयंकृत शरीर के अङ्ग–उपाङ्ग कष्टप्रद या घातक हों।

परघात – जिसके उदय पर के घात करने का पुद्गल संचय हो।

आतप – जिसके उदय से सूर्य आदि के निमित्त से उष्ण प्रकाश होता है।

उद्योत – जिसके उदय से शरीर में उष्णता–रहित प्रकाश हो।

उच्छ्वास – जिसके उदय से उच्छ्वास और निश्वास रूप कार्य के उत्पादन में समर्थ होता है।

विहायोगति – जिसके उदय से जीव का आकाश में गमन हो।

प्रत्येक शरीर – जिसके उदय से एक शरीर का एक ही स्वामी हो।

त्रस – जिसके उदय से जीव दो इन्द्रिय आदि जङ्गम जीवों में जन्म लेता है।

सुभग – जिसके उदय से अन्यजन को प्रीतिकर अवस्था होती है।

सुस्वर – जिसके उदय से मनोज्ञ स्वर होता है।

शुभ – जिसके उदय से रमणीयता होती है।

सूक्ष्म – जिसके उदय से सूक्ष्म शरीर की रचना होती है।

पर्याप्ति – जिसके उदय से आत्मा अन्तर्मुहूर्त में आहार, शरीर, इन्द्रिय, प्राणापान (श्वासोच्छ्वास) भाषा और मनःरूप पर्याप्तियों में से यथायोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण करने में समर्थ हो जाता है।

स्थिर – जिसके उदय से शरीर में स्थिरता बनी रहती है अथवा जिसके उदय से दुष्कर उपवास आदि तप करने पर भी अङ्ग–उपाङ्ग की स्थिरता रहती है।

आदेय – जिसके उदय से प्रभा से युक्त शरीर होता है।

यशःकीर्ति – जिसके उदय से पुण्य गुणों की स्थापन हो।

सेतराणि – इनसे विपरीत कर्म – साधारण शरीर, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अशुभ, बादर, अपर्याप्ति, अस्थिर, अनादेय और अयशःकीर्ति।

साधारण शरीर – जिसके उदय से एक ही शरीर बहुत–सी आत्माओं के उपभोग का कारण होता है या एक ही शरीर के बहुत जीव स्वामी होते हैं।

स्थावर – जिस कर्म के उदय से प्राणी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति रूप पञ्च स्थावर एकेन्द्रियों में जन्म लेता है।

दुर्भग – रूप आदि गुणों से सहित होते हुए भी लोगों के जिसके उदय से अप्रीतिकर प्रतीत होता है।

दुःस्वर – जिसके उदय से अमनोज्ञ स्वर होता है।

अशुभ – जिस कर्म के उदय से रमणीय प्रतीति नहीं होती हो।

बादर – जिसके उदय से अन्य को बाधा देने वाले और अन्य से बाधित होने वाले शरीर में जीव का जन्म होता है।

अपर्याप्ति – जिस कर्म के उदय से जीव यथायोग्य आहार आदिक छहों पर्याप्तियों में से किसी भी पर्याप्ति को पूर्ण नहीं कर सकता, पर्याप्तियों को पूर्ण करने में अभाव का हेतु होता है।

अस्थिर – जिसके उदय से रस, रुधिर, मांस, मेद (वसा), मज्जा, अस्थि और शुक्र रूप धातुओं का क्रमशः परिणमन होता है अथवा जिसके उदय से एक उपवास करने से या साधारण शीत या उष्ण आदि से शरीर के अङ्गोपाङ्ग कृश हो जाते हैं।

अनादेय – निष्प्रभ शरीर का कारण अनादेय नाम कर्म है अथवा जिसके उदय से अच्छा कार्य करने पर भी जीव गौरव को प्राप्त नहीं होता हो।

अयशःकीर्ति – जिसके उदय से विद्यमान या अविद्यमान अवगुणों का उद्भावन लोक द्वारा किया जाए।

तीर्थकरत्वम् – आर्हन्त्य पद की कारण तीर्थङ्कर कर्मप्रकृति।

Meaning of Words : **Gati** - Operation of this karma makes the soul to transmigrate from one life-course to the other.

Jāti - By operation of this karma, the soul born in a class gets a class feeling of similarity of other souls because of conditions of the group.

Śarīra - Operation of this karma results in making a particular type of body for the soul.

Aṅgopāṅga - Operation of this karma causes the clear formation or divisions of limbs & sublimbs.

Nirmāṇa - As a result of rise of Jāti Nāma karma, the exact location and extent of limbs & sub-limbs like eyes etc. are formed & made.

Bandhana - By operation of this karma, the space points of the matter particle Skandhas obtained as a result of rise of Śarīra Nāma karma get intermingled with one another.

Saṅghāta - By operation of this karma, interfusion of molecules of different kinds of bodies like Audārika etc. in weaving them with the soul takes place with perfect impaction i.e. without holes.

Saṁsthāna - By operation of this karma, figure & shape of the body i.e. its proportion etc. are decided.

Saṁhanana - By operation of this karma, specific joints of the bones take place.

Sparśa - By operation of this karma, touch of the body is formed corresponding to the class in which a soul is born.

Rasa - The operation of this karma is the cause of formation of juices like pungent etc. or the kinds there of.

Gandha - The operation of the karma is the cause of smell of the body.

Varṇa - The operation of this karma is the cause of colour of the body.

Ānupūrvya - The operation of this karma is the cause for maintaining the shape of the previous body while the soul in transmigration state.

Agurulaghu - Operation of this karma is the cause for body becoming neither too heavy to move down like iron or too light to be go up like cotton.

Upaghāta - Operation of this karma is the cause for the soul to have limbs or organs which cause one's own harm.

Paraghāta - Operation of this karma is the cause of hurt or death of other soul by means of possessing some body organs etc.

Ātapa - Operation of this karma is the cause for the soul to possess the body with radiant heat like body of the sun.

Udyota - Operation of this karma is the cause for illumination in the body without heat (like fire-fly or like moon-light).

Ucchvāsa - Operation of this karma enables the soul to have respiration necessary for life continuity.

Vihāyogati - Operation of this karma enables one to move in space.

Pratyeka Śarīra - Operation of this karma is the cause of one owner of one body.

Trasa - Operation of this karma is the cause for the soul to be born as mobile-being having two to five sense-organs.

Śubhaga - Operation of this karma is the cause for getting an amiable personality liked by others.

Susvara - Operation of this karma is the cause for one's melodious voice.

Śubha - Operation of this karma is the cause for well-balanced beautiful body.

Sūkṣma - Operation of this karma is the cause for one's subtle body formation.

Paryāpti - Operation of this karma enables the soul to complete vitalities of food intake, body, sense organs, respiration, speech and mind, as the case may be, within a period of one Antarmuhūrta after it is born.

Sthira - Operation of this karma is the cause of stable dispositions or the limbs & sub-limbs remaining stable even after difficult penance like fasts etc.

Ādeya - Operation of this karma is the cause of radiance of the body.

Yaśaḥkīrti - Operation of this karma is the cause for alround name & fame due to meritorius deeds.

Setarāṇi - Opposite karmas i.e. Sādhāraṇa Sarīra, Sthāvara, Durbhaga, Duḥsvara, Aśubha, Bādara, Aparyāpti, Asthira, Anādeya and Ayaśaḥkīrti.

Sādhāraṇa Śarīra - Operation of this karma is the cause for several souls to have a common body or several soules are owners of one body.

Sthāvara - Operation of this karma is the cause for the soul to be born as immobile being having only one sense organ and in five kinds of either earth bodied, water bodied, fire bodied, air bodied or vegetable bodied.

Durbhaga - Operation of this karma is the cause of one's repulsion even though one may have lovely form.

Duḥsvara - Operation of this karma is the cause of bad voice.

Aśubha - Operation of this karma is the cause of unpleasantness to the one who looks at.

Bādara - Operation of this karma is the cause of possessing such a body which obstructs others and is obstructed by others.

Aparyāpti - Operation of this karma is the cause for not enabling completion of any one of the characteristics of vitalities of food intake etc. as the case may be.

Asthira - Operation of this karma is the cause for un-steady circulation and formation of seven types of physiological matter (Dhātu) e.g. juice, blood, flesh, fat, bones, marrow and śukra/semen as the case may be or on the rise of this karma, the limbs and sub-limbs of the body get adversely affected even with a single fast or with mild cold or hot environment.

Anādeya - Operation of this karma is the cause for non-glitter body or one does not get due recognition even while doing commendable work.

Ayaśaḥkīrti - Operation of this karma is the cause for circulation or propagation of the bad virtues whether true or false.

Tīrthakaratvam - Operation of this karma is the cause of being Tīrthaṅkara - preaching the path of salvation to all living beings.

सूत्रार्थ : गति, जाति, शरीर, अङ्गोपाङ्ग, निर्माण, बन्धन, सङ्घात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, आनुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास और विहायोगति तथा प्रतिपक्ष प्रकृतियों के साथ यानी प्रत्येक शरीर और साधारण शरीर, त्रस और स्थावर, सुभग और दुर्भग, सुस्वर और दुःस्वर, शुभ और अशुभ, सूक्ष्म और बादर, पर्याप्ति और अपर्याप्ति, स्थिर और अस्थिर, आदेय और अनादेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति एवं तीर्थकरत्व – ये बयालीस नाम कर्म के भेद हैं।

English Rendering : The physique making Nāma Karmas comprise the life-course, the class, the body, limbs & sub-limbs, formation, binding, molecular interfusion, structure, joint, touch, taste, odour, colour, body shape in transmigration, neither heavy nor light body, self-annihilation, annihilation of others, emitting warm light, emitting cool luster, respiration, gait, individual body, mobile beings, amiablity, melodius voice, beauty of body form, subtle body, complete development of vitalities,

stablity of limbs & sub-limbs, lustrous body, glory & renown and opposite of these e.g. common body, immobile beings, non-amiability, bad voice, ugly body form, gross body, incomplete development of vitalities, unstability of limbs & sub-limbs, non-lustrous body, propagation of bad virtues and Tīrthakaratva Nāma Karma - all these are forty two kinds of Nāma Karma.

टीका : जिसके उदय से जीव दूसरे भव को प्राप्त करता है, उसको गति नाम कर्म कहते हैं। गति के चार भेद हैं – नरक गति, तिर्यञ्च गति, मनुष्य गति और देव गति।

जिसके उदय से नरक आदि गतियों में समानता पाई जावे, उसे जाति नाम कर्म कहते हैं। जाति के पाँच भेद हैं – एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति और पञ्चेन्द्रिय जाति।

जिसके उदय से जीव के शरीर की रचना हो, वह शरीर नाम कर्म है। इसके पाँच भेद हैं – औदारिक शरीर, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर और कार्मण शरीर।

जिसके उदय से अङ्ग और उपाङ्गों की रचना हो या भेद होता हो, उसको अङ्गोपाङ्ग नाम कर्म कहते हैं। इसके तीन भेद हैं – औदारिक शरीर अङ्गोपाङ्ग, वैक्रियिक शरीर अङ्गोपाङ्ग और आहारक शरीर अङ्गोपाङ्ग। तैजस शरीर और कार्मण शरीर के अङ्गोपाङ्ग नहीं होते। दो हाथ, दो पैर, मस्तक, वक्षस्थल, पीठ और नितम्ब – ये आठ अङ्ग हैं। ललाट, कान, नाक, नेत्र आदि उपाङ्ग हैं।

जिसके उदय से अङ्गोपाङ्ग का यथास्थान और यथाप्रमाण रचना होती है, उसे निर्माण नाम कर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं – स्थान निर्माण और प्रमाण निर्माण।

शरीर नाम कर्म के उदय से ग्रहण किये गये पुद्‌गल स्कन्धों का परस्पर में प्रदेशों का संश्लेष रूप सम्बन्ध जिसके उदय से होता है, उसे बन्धन नाम कर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं – औदारिक शरीर बन्धन नाम कर्म, वैक्रियिक शरीर बन्धन नाम कर्म, आहारक शरीर बन्धन नाम कर्म, तैजस शरीर बन्धन नाम कर्म और कार्मण शरीर बन्धन नाम कर्म।

जिसके उदय से शरीर के प्रदेशों का ऐसा बन्धन हो कि उसमें एक भी छिद्र न रहे व प्रदेश एक रूप हो जाएँ, उसको सङ्घात नाम कर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं – औदारिक शरीर सङ्घात नाम कर्म, वैक्रियिक शरीर सङ्घात नाम कर्म, आहारक शरीर सङ्घात नाम कर्म, तैजस शरीर सङ्घात नाम कर्म और कार्मण शरीर सङ्घात नाम कर्म।

जिसके उदय से शरीर के आकार की रचना होती है, वह संस्थान नाम कर्म है। इसके छह भेद हैं – समचतुरस्र संस्थान, न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान, स्वाति संस्थान, कुब्जक संस्थान, वामन संस्थान और हुण्डक संस्थान।

जिसके उदय से हड्डियों का बन्धन विशेष होता है, उसको संहनन कहते हैं। इसके छह भेद हैं – वज्रर्षभनाराच संहनन, वज्रनाराच संहनन, नाराच संहनन, अर्द्धनाराच संहनन, कीलिका संहनन और असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन। वज्रर्षभनाराच संहनन वाला जीव ही मोक्ष प्राप्त करता है या सातवीं पृथिवी तक जा सकता है। विकलत्रय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के केवल असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन होता है। असंख्यात वर्षायुष्क जीव पहले तीन कालों में ही उत्पन्न होते हैं। असंख्यात वर्ष की आयुवाले भोगभूमिजों में वज्रर्षभनाराच संहनन होता है। चौथे काल में छहों संहनन होते हैं। पाँचवें काल में अन्त के तीन संहनन होते हैं। छठवें काल में केवल असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन होता है। विदेह क्षेत्र में, विद्याधरों के स्थानों में और म्लेच्छ खण्डों में मनुष्यों और तिर्यञ्चों के छहों संहनन होते हैं। नागेन्द्र पर्वत से बाहर तिर्यञ्चों के छहों संहनन होते हैं। कर्मभूमि में उत्पन्न होने वाली स्त्रियों के आदि के तीन संहनन नहीं होते हैं, केवल अन्त के तीन संहनन होते हैं। देव, नारकी एवं एकेन्द्रियों के संहनन नहीं पाया जाता है।

आदि के सात गुणस्थानों में छहों संहनन होते हैं। उपशम श्रेणी के चार गुणस्थानों में (आठवें से ग्यारहवें तक में) आदि के तीन संहनन होते हैं। क्षपक श्रेणी के चार गुणस्थानों (आठवें, नौवें, दशवें और बारहवें) में और सयोगकेवली गुणस्थान में प्रथम वज्रर्षभनाराच संहनन होता है।

जिसके उदय से स्पर्श उत्पन्न हो, वह स्पर्श नाम कर्म है। इसके आठ भेद हैं – कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, स्निग्ध, रूक्ष, शीत और उष्ण।

जिसके उदय से रस में भेद उत्पन्न हो, वह रस नाम कर्म है। इसके पाँच भेद हैं – तिक्त, कटुक, कषाय, आम्ल और मधुर।

जिसके उदय से गन्ध की उत्पत्ति हो, वह गन्ध नाम कर्म है। इसके दो भेद हैं – सुरभि गन्ध और असुरभि गन्ध।

जिसके उदय से वर्ण में विभाग हो, वह वर्ण नाम कर्म है। इसके पाँच भेद हैं – कृष्ण, नील, लाल, पीला और शुक्ल।

जिसके उदय से विग्रहगति में पूर्व शरीर के आकार का नाश नहीं होता है, उसको आनुपूर्व्य नाम कर्म कहते हैं। आनुपूर्व्य नाम कर्म चार प्रकार का है – नरक गति

प्रायोग्यानुपूर्व्य, तिर्यञ्च गति प्रायोग्यानुपूर्व्य, मनुष्य गति प्रायोग्यानुपूर्व्य और देव गति प्रायोग्यानुपूर्व्य। जिस कर्म स्कन्ध के उदय से मनुष्य अथवा तिर्यञ्च अपनी आयु पूर्ण करके पूर्व शरीर को छोड़कर नरक गति के अभिमुख होता है, उस समय विग्रहगति में उदय तो नरक गति प्रायोग्यानुपूर्व्य का होता है, परन्तु आत्म-प्रदेशों का आकार पूर्व शरीर के अनुसार यानी मनुष्य या तिर्यञ्च का ही बना रहता है, वह नरक गति गतिप्रायोग्यानुपूर्व्य नाम कर्म है। इसी प्रकार अन्य तीन गति सम्बन्धी प्रायोग्यानुपूर्व्य नाम कर्म भी जानना चाहिए।

जिसके उदय से जीव का शरीर न तो लोहे के गोले की तरह भारी होता है और न रुई के समान हल्का ही होता है, वह अगुरुलघु नाम कर्म है।

जिसके उदय में शरीर के अङ्ग-उपाङ्ग स्वयं उस जीव के लिये कष्टप्रद या घातक हो जाते हैं, वह उपघात नाम कर्म है। जिसके उदय से शरीर में दूसरे जीवों का घात करने में निमित्तभूत पुद्‌गल का संचय हो, वह परघात नाम कर्म है।

जिसके उदय से शरीर में आतपन हो, वह आतप नाम कर्म है; जैसे, सूर्य में। जिसके उदय से शरीर में उद्योत हो, वह उद्योत नाम कर्म है; जैसे, चन्द्रमा, जुगुनू आदि का शरीर। जिसके उदय से उच्छ्‌वास हो, वह उच्छ्‌वास नाम कर्म है। जिसके उदय से आकाश में गमन हो, वह विहायोगति नाम कर्म है। विहायोगति नाम कर्म दो प्रकार का है - प्रशस्त और अप्रशस्त। जिस कर्म के उदय से सिंह, हाथी, हंस, बैल आदि के समान प्रशस्त गमन होता है, वह प्रशस्त विहायोगति नाम कर्म है। गधा, ऊँट, सियार, कुत्ता आदि के समान अप्रशस्त गमन होता है, वह अप्रशस्त विहायोगति नाम कर्म है। जिसके उदय से एक शरीर का स्वामी एक जीव हो, वह प्रत्येक शरीर नाम कर्म है। जिसके उदय से एक शरीर के उपभोग के स्वामी अनेक जीव हों, वह साधारण शरीर नाम कर्म है।

जिसके उदय से दो इन्द्रिय आदि जीवों में जन्म हो, उसको त्रस नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से पृथिवीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों में जन्म हो, उसको स्थावर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से किसी जीव को देखने या सुनने पर उसके प्रति प्रीति हो, वह सुभग नाम कर्म है। जिसके उदय से रूप और लावण्य से सहित होने पर भी जीव दूसरों को अच्छा न लगे, वह दुर्भग नाम कर्म है। जिसके उदय से मनोहर स्वर हो, वह सुस्वर नाम कर्म है। जिसके उदय से कर्कश स्वर हो, वह दुःस्वर नाम कर्म है। जिसके उदय से शरीर सुन्दर होता है, वह शुभ नाम कर्म है। जिसके उदय से शरीर असुन्दर होता है, वह अशुभ नाम कर्म है। जिसके उदय से शरीर सूक्ष्म होता है,

वह सूक्ष्म नाम कर्म है। जिसके उदय से शरीर स्थूल होता है या अन्यों के लिये बाधाकारक हो, वह बादर नाम कर्म है। जिसके उदय से आहार आदि पर्याप्तियों की रचना होती है, वह पर्याप्ति नाम कर्म है। पर्याप्तियाँ छह होती हैं – १. आहार पर्याप्ति २. शरीर पर्याप्ति, ३. इन्द्रिय पर्याप्ति, ४. श्वासोच्छ्वास (प्राणापान) पर्याप्ति, ५. भाषा पर्याप्ति और ६. मनः पर्याप्ति। जिसके उदय से पर्याप्तियाँ पूर्ण किये बिना ही जीव मर जाता है, वह अपर्याप्ति नाम कर्म है। जिसके उदय से धातु और उपधातु स्थिर रहें, वह स्थिर नाम कर्म है। जिसके उदय से धातु और उपधातु स्थिर न रहें, वह अस्थिर नाम कर्म है। जिसके उदय से शरीर कान्ति सहित हो, वह आदेय नाम कर्म है। जिसके उदय से शरीर कान्ति रहित हो, वह अनादेय नाम कर्म है। जिसके उदय से जीव की संसार में प्रशंसा हो, वह यशःकीर्ति नाम कर्म है। जिसके उदय से जीव की निन्दा हो, वह अयशःकीर्ति नाम कर्म है। जिसके उदय से जीव अर्हन्त अवस्था को प्राप्त हो, वह तीर्थंकरत्व नाम कर्म है।

इस प्रकार नाम कर्म के बयालीस भेद हैं। उत्तर भेदों के साथ ये तिरानवे हो जाते हैं।

Comments : That karma on the rise of which a living being attains another birth is the state of existence (Gati Nāma karma). It is of four kinds - the infernal state of existence, the animal state of existence, the human state of existence and celestial state of existence.

That karma on the rise of which a living being is classified in a group of alike entities, is known as 'Jāti Nāma karma'. It is of five kinds - the class of living beings with one sense, the class of living beings with two senses, the class of living beings with three senses, the class of living beings with four senses and the class of living beings with five senses.

That, on the rise of which, a body is attained by a soul is 'Śarīra Nāma karma'. It is of five kinds - the gross physical body, transformable body, translocational body, the electric body and the karmic body.

That, on the rise of which the main limbs & sub limbs of the body are formed or distinguished is the 'Aṅgopāṅga Nāma karma.' It is of three kinds - the limbs & sub limbs of gross physical body, the limbs & sub limbs of transformable body and the limbs & sub limbs of translocational body. Two hands, two foot, head, chest, back and buttock are eight limbs and forehead, ears, nose, eyes etc. are sub limbs.

That which causes the formation of limbs and sub limbs in their proper place and in size is known as 'Nirmāṇa Nāma karma'. It is of two kinds - fixing the position and fixing the size.

The close union or consolidation of the particles of matter acquired on the rise of physique making karma is known as Bandhana Nāma karma. It is of five kinds - binding Nāma karma of gross body, binding Nāma karma of transformable body, the binding Nāma karma of translocational body, the binding Nāma karma of the electric body and the binding Nāma karma of the karmic body.

That, on the rise of which oneness or compactness is attained by the close interfusion i.e. without any intervening space of space-points of the bodies is the Saṅghāta Nāma karma. It is of five kinds - gross body molecular interfusion Nāma karma, transformable body molecular interfusion Nāma karma, translocational body molecular interfusion Nāma karma, electric body molecular interfusion Nāma karma and karmic body molecular interfusion Nāma karma.

That, on the rise of which the structure of the body is accomplished is known as 'Saṁsthāna Nāma karma'. It is of six kinds - the perfectly symmetrical body, the upper part alone symmetrical, the lower part alone symmetrical, the hunch backed body, the short heightened i.e. dwarfish body and the entirely unsymmetrical or deformed body.

That, on the rise of which the different types of joints of the bones are effected is known as 'Saṁhanana'. It is of six kinds - Vajrarṣabhanārāca Saṁhanana (very strong osseous structure with admantine nails & coverings), Vajranārāca Saṁhanana (strong osseous structure with admantine nails but ordinary covering), Nārāca Saṁhanana (Inferior joints with ordinary nails), Ardhanārāca Saṁhanana (weak joints with half nails), Kīlikā Saṁhanana (fused joints with very weak strength) and Asampraptāsṛpātikā Saṁhanana (quite a weak joint only with ligaments). Only a man having Vajrarsabhanārāca Saṁhanana attains salvation or transmigrates to seventh earth of hell. Living beings of having Vikalatraya and there five senses ones without mind faculty possess only Asamprāptāsṛpatikā Saṁhanana. Living-beings with innumerable years of life span are born in first three eras. Those in pleasure lands with innumerable years of life-span possess Vajrarṣabhanārāca Saṁhanana. In the fourth era, all the six types of

osseous structures are found. In the fifth era, there are only three last osseous structures. In the sixth era, only last Asamprāptāsṛpātikā Saṁhanana exists. The human beings & Tiryañcas born in Videha Kṣetra, Vidyādharas and those in Mlecchakhandas have all the six kinds of osseous structures. Outside the Nāgendra Parvata, Tiryañcas do possess all six kinds of osseous structures. Women born in action land do not have first three kinds of osseous structures but possess only the last three kinds. Celestial beings, hellish being and those with one sense do not possess Saṁhanana.

Those dwelling in first seven stages of spiritual development can have all six osseous structures. Those who rise the subsidential ladder (from eight to eleventh stage of spiritual development, possess first three kinds of osseous structure. Those who rise the destructive ladder (in eight, ninth, tenth & twelfth stage of spiritual development) and embodied omniscient possess only the first kind of osseous structure i.e. Vajrarṣabhanārāca.

That which determines the touch, is 'Sparśa Nāma karma'. It is of eight kinds - hard, soft, heavy, light, smooth, rough, cold and hot.

That which determines the taste is the 'Rasa Nāma karma'. It is of five kinds - bitter, pungent, astringent, sour and sweet.

That which determines the odour is 'Gandha Nāma karma'. It is of two kinds - pleasant smell and unpleasant smell.

That which causes distinction in colour is the 'Varṇa Nāma karma'. It is of five kinds - black, blue, red, yellow and white.

That, on the rise of which the form of the previous body does not disappear during transmigration after one's death is known as 'Ānupūrvya Nāma karma'. It is of four kinds - 'Ānupūrvya Nāma karma relating to infernal state of existence, Tiryañca state of existence, human state of existence and celestial state of existence. That rise of karma molecules which cause human beings or Tiryañcas to complete their life spans and are at the threshold of migrating to the infernal state of existence, then in the transmigration state is the rise of Narakagatiprāyogyānupūrvya but the shape of the space points remain that of the previous body; i.e. it conforms to the body of a human or a

Tiryañca as the case may be. Similarly it should be understood for the other three Prāyogyānupūrvya Karmas relating to Tiryañca state of existence, human state of existence and celestial state of existence.

That, on the rise of which there is no falling down like an iron ball of heavy weight, nor going up, like warm cotton of lightness, is 'Agurulaghu Nāma karma.'

That on the rise of which, there is self-hurt or self-annihilation by his own limbs or sub limbs etc. is known as 'Upaghāta Nāma karma'. That which causes destruction of others by possessing some such organs is known as 'Paraghāta Nāma karma'.

That, which causes the body of the being to emit warm light, is known as 'Ātapa Nāma karma'. For example the body of the sun. That which causes the body of a being to emit cool brilliance or luster is 'Udyota Nāma karma'. For example the body of moon, the glow-worm etc. That which enables breathing is 'Ucchvāsa Nāma karma'. That which causes movement in space is 'Vihāyogati Nāma karma'. It is of two kinds - graceful manner and awkward manner motion. That which causes movement like lion, elephant, swan, ox etc. is graceful manner motion Vihāyogati. Movement like ash, camel, jackal, dog etc. is awkward manner Vihāyogati. That which causes an individual body for the use of a single self is 'Pratyeka Śarīra Nāma karma'. That which causes several beings to possess one common body for their use is 'Sādhāraṇa Nāma karma'.

That, on the rise of which a being is born with two or more senses is 'Trasa Nāma karma'. That which causes birth as earth bodied etc, having only one sense is 'Sthāvara Nāma karma'. That on the rise of which others are delighted on hearing or knowing about the one is 'Subhaga Nāma karma'. That on the rise of which, others are displeased with one even though one is endowed with attractive form, luster etc. is 'Durbhaga Nāma karma'. That which causes a melodius voice is 'Susvara Nāma karma'. That which causes harsh voice is 'Duḥsvara Nāma karma'. That which causes charm & beauty of the body is 'Subha

Nāma karma'. That which causes ugly body is 'Aśubha Nāma karma'. That which produces a subtle body is 'Sūkṣma Nāma karma'. That which produces a gross body which causes hinderance to others is 'Bādara Nāma karma'. That which causes the complete development of physical characteristics of vitalities of the body is 'Paryāpti Nāma karma'. Such vitalities are six - 1. taking in the molecules to form the body, 2. development of the body, 3. development of the sense organs, 4. development of respiration. 5. development of speech vitality and 6. development of mind. When a living being dies prior to completion of vitalities, it is due to fruition of 'Aparyāpti Nāma Karma'. That fruition of karma which causes stablity in primary and secondary elements of body (Dhātu and Updhātu) is known as 'Sthira Nāma karma'. That fruition which causes instablity of these elements is known as 'Āsthira Nāma karma'. That fruition which causes radiance of the body is known as 'Ādeya Nāma karma'. That fruition which causes radianceless body is known as 'Anādeya Nāma karma'. That fruition which is the cause of one's name and fame is known as 'Yaśaḥkīrti Nāma karma'. That fruition which is the cause of name and defame is known as 'Ayaśaḥkīrti Nāma karma'. That fruition which causes attainment of supreme status (Arihanta status) of the soul is known as 'Tirthaṅkara Nāma karma'. Thus there are in all 42 sub-kinds of Nāma karma. With further divisions, these become 93.

गोत्र कर्म के उत्तर भेद
Sub-divisions of Gotra Karma

उच्चैर्नीचैश्च।।१२।।

(उच्चैः नीचैः च।)

Uccairnīcaiśca. (12)

शब्दार्थ : **उच्चैः** – उच्च; **नीचैः** – नीच; **च** – और (गोत्र कर्म के भेद हैं)।

Meaning of Words : **Uccaiḥ** - high; **Nīcaiḥ** - low; **Ca** - and (are kinds of Gotra karma).

सूत्रार्थ : उच्च गोत्र और नीच गोत्र, ये गोत्र कर्म के भेद हैं।

English Rendering : The high and low are two family status determining karma.

टीका : जिस कर्म के उदय से लोक पूजित कुलों में जन्म होता है, वह उच्च गोत्र है। भवनत्रिक एवं सभी वैमानिक देव-देवियों के उच्च गोत्र का उदय होता है। भोगभूमियाँ मनुष्यों के उच्च गोत्र होता है। चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण, तीर्थङ्कर, तीर्थङ्कर के माता-पिता आदि महापुरुषों के उच्च गोत्र का उदय होता है। संयमासंयम पालने वाले तिर्यञ्चों के उच्च गोत्र का उदय पाया जाता है।

जिस कर्म के उदय से निन्दनीय कुलों में जन्म होता है, वह नीच गोत्र है। सभी पृथिवियों के नारकियों के नीच गोत्र का उदय पाया जाता है। कर्मभूमियाँ तिर्यञ्च, जो संयमासंयम से रहित हों और सभी भोगभूमियाँ तिर्यञ्चों के नीच गोत्र का उदय होता है। एक इन्द्रिय से चार इन्द्रिय तक के जीवों को नीच गोत्र का ही उदय होता है।

Comments : That karma which causes birth in high or noble family is high status determining karma. All celestial beings - Bhavanatrika and Vaimānika - whether male or female celestial beings are endowed with the rise of high status determining karma. Those born in pleasure lands have high status. Cakravartī, Balabhadra, Narāyaṇa, Pratinārāyaṇa, Tīrthaṅkara, parents of Tīrthaṅkara etc. - all noble personalities are endowed with rise of high status determining karma. Those Tīryañcas who observe 'Saṁyamāsaṁyama' vows have rise of high status determining karma.

To be born in a low family lacking in prestige and respectablity is due to low status determining karma. All infernal beings of all earths have the rise of low status determining karma. All Tīryañcas of action lands who do not observe Saṁyamāsaṁyama Vow, as well as all Tīryañcas of pleasure lands have the rise of low family status determining karma. All beings having one sense to four senses have the rise of low family status determining karma.

अन्तराय कर्म के उत्तर भेद

Sub-divisions of Obstructive Karma

दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम्।।१३।।

(दान–लाभ–भोग–उपभोग–वीर्याणाम्।)

Dānalābhabhogopabhogavīryāṇām. (13)

शब्दार्थ : **दान –** दान (अन्तराय); **लाभ –** लाभ (अन्तराय); **भोगोपभोग –** भोग और उपभोग (अन्तराय); **वीर्याणाम् –** वीर्य (अन्तराय) के (ये अन्तराय कर्म के भेद हैं।)

Meaning of Words : **Dāna** - charity (obstruction); **Lābha** - gain (obstruction); **Bhogopabhoga** - enjoyment of consumable & non-consumable things (obstruction); **Vīryāṇām** - capacity or power (obstruction) - all these are due to rise of obstructive karmas.

सूत्रार्थ : दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य – ये अन्तराय कर्म के भेद हैं।

English Rendering : Obstruction in charity, gain, enjoyment of consumable & non-consumable things and in utilization of capacity or power are kinds of obstructive karma.

टीका : जिसके उदय से देने की इच्छा होने पर भी न दे सके, वह दानान्तराय कर्म है। जिसके उदय से प्राप्त करने की इच्छा होने पर भी लाभ नहीं हो पाता, वह लाभान्तराय कर्म का फल है। जिसके उदय से भोगने की इच्छा होने पर भी भोग नहीं कर सकता है, वह भोगान्तराय कर्म है। जिसके उदय से उपभोग की इच्छा होने पर भी उपभोग नहीं कर सकता, वह उपभोगान्तराय कर्म है। जिसके उदय से कार्य करने का उत्साह होने पर भी निरुत्साहित हो जाता है, वह वीर्यान्तराय कर्म है।

Comments : That, on the rise of which one is unable to make gifts even if he wants to, is 'Dānāntarāya karma'. That rise of which hinders him from attaining any gain even though he sets his heart on it, is the fruition of 'Lābhāntarāya karma'. That which prevents enjoyment of consumable things, though he is desirious of enjoyment is due to

'Bhogāntarāya karma'. That which prevents enjoyment of non-consumable things though one is eager for enjoyment of such things is 'Upabhogāntarāya karma'. That which prevents effort or exertion, although he wants to make an effort or exert himself is due to 'Vīryāntarāya karma'.

कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति
Maximum duration of Karmas

आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम–
कोटीकोट्यः परा स्थितिः।।१४।।

(आदितः तिसृणाम् अन्तरायस्य च त्रिंशत्–सागरोपम–कोटीकोट्यः परा स्थितिः।)

Āditastisṛṇāmantarāyasya Ca Triṁśatsāgaropama-
kotīkotyaḥ Parā Sthitiḥ. (14)

शब्दार्थ : **आदितस्तिसृणाम्** – आदि के तीन (कर्मों) की; **अन्तरायस्य च** – तथा अन्तराय (कर्म) की; **त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः** – तीस कोटाकोटि (कोड़ाकोड़ी) सागरोपम (प्रमाण); **परा** – उत्कृष्ट; **स्थितिः** – स्थिति (होती है)।

Meaning of Words : **Āditastisṛṇām** - of the first three (karmas); **Antarāyasya Ca** - and of obstructive karma; **Triṁśatsāgaropamakotīkotyaḥ** - thirty Koṭākoṭi Sāgaropma; **Parā** - the maximum; **Sthitiḥ** - duration.

सूत्रार्थ : आदि के तीन कर्मों की तथा अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण है।

English Rendering : The maximum duration of the first three karmas and that of obstructive karma is thirty Koṭākoṭi Sāgaropama.

टीका : आदि के तीन कर्म हैं – ज्ञानावरण, दर्शनावरण और वेदनीय कर्म हैं। इन तीनों की तथा अन्तराय कर्म की भी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम है। यह स्थिति सञ्ज्ञी, पञ्चेन्द्रिय, पर्याप्तक जीव के ही बँधती है। ऐसा बन्ध अति तीव्र संक्लेश परिणामों से मिथ्यादृष्टि जीव के ही होता है।

Comments : First three karmas are - knowledge obscuring, perception obscuring and feeling producing. The maximum duration of all these three and that of obstructive karma is thirty Koṭākoṭi Sāgaropama. Bondage for such a duration is made only by a being who is endowed with faculty of mind, have five senses and have completed all his physical vitalities. Such a bondage duration is made by a wrong believer with extremely painful thoughts.

मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति

Maximum duration of Deluding Karma

सप्ततिर्मोहनीयस्य।।१५।।

(सप्ततिः मोहनीयस्य।)

Saptatirmohanīyasya. (15)

शब्दार्थ : **सप्ततिः** – सत्तर (कोटाकोटि सागरोपम); **मोहनीयस्य** – मोहनीय (कर्म) की।

Meaning of Words : **Saptatiḥ** - seventy (Koṭākoṭi Sāgaropamas); **Mohanīyasya** - of Deluding Karma.

सूत्रार्थ : मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण है।

English Rendering : The maximum duration of Deluding Karma is seventy Koṭākoṭi Sāgaropama.

टीका : मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटाकोटि सागरोपम का स्थिति बन्ध मिथ्यादृष्टि, सञ्ज्ञी, पञ्चेन्द्रिय, पर्याप्तक जीव ही करता है।

Comments : The maximum duration of deluding karma is of seventy Koṭākoṭi Sāgaropama. It is bound by a wrong believer who is endowed with the faculty of mind, has five senses and have completed all his physical vifalities.

नाम और गोत्र कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति
Maximum duration of Nāma & Gotra Karmas

विंशतिर्नामगोत्रयोः ।।१६।।

(विंशतिः नाम–गोत्रयोः।)

Viṁśatirnāmagotrayoḥ. (16)

शब्दार्थ : **विंशतिः** – बीस (कोटाकोटि सागरोपम); **नामगोत्रयोः** – नाम और गोत्र (कर्मों) की (उत्कृष्ट स्थिति है)।

Meaning of Words : **Viṁśatiḥ** - twenty (Koṭākoṭi Sāgaropama); **Nāmagotrayoḥ** - (maximum duration) of Nāma & Gotra karmas.

सूत्रार्थ : नाम और गोत्र कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण है।

English Rendering : The maximum duration of Nāma (physique making karma) and Gotra karma (family status determining karma) is twenty Koṭākoṭi Sāgaropama.

टीका : नाम और गोत्र कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटाकोटि सागरोपम का बन्ध मिथ्यादृष्टि, सञ्ज्ञी, पञ्चेन्द्रिय, पर्याप्तक जीव ही करता है।

Comments : The maximum duration of Nāma and Gotra karmas of twenty Koṭākoṭī Sāgaropama is made by a wrong believer who is endowed with the faculty of mind, has all five senses and has completed his physical vitalities.

आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति
Maximum duration of Age Determining Karma

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ।।१७।।

(त्रयस्त्रिंशत्–सागरोपमाणि आयुषः।)

Trayastriṁśatsāgaropamāṇyāyuṣaḥ. (17)

शब्दार्थ : **त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि** – तैंतीस सागरोपम (प्रमाण); **आयुषः** – आयु (कर्म) की (उत्कृष्ट स्थिति है)।

Meaning of Words : **Trayastriṁśatsāgaropamāṇi** - Thirty-three Sāgaropama; **Āyuṣaḥ** - (Maximum duration) of age determining karma.

सूत्रार्थ : आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम प्रमाण है।

English Rendering : The maximum duration of age determining karma is thirty-three Sāgaropama.

टीका : असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक के आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति का बन्ध पल्योपम के असङ्ख्यातवें भाग प्रमाण है, क्योंकि वह पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण देवायु या नरकायु का बंध कर सकता है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय जीवों के आयु कर्म का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध एक पूर्वकोटि प्रमाण है, क्योंकि वे नरक गति, देव गति एवं भोगभूमि के जीवों में जन्म नहीं ले सकते। सञ्ज्ञी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों की नरक गति सम्बन्धी तैंतीस सागरोपम, कर्मभूमिज मनुष्यों के नरकगति और देवगति सम्बन्धी तैंतीस सागरोपम, भोगभूमिन मनुष्य एवं तिर्यञ्चों को दो सागरोपम आयु कर्म का स्थिति बन्ध होता है, क्योंकि वे सौधर्म–ईशान स्वर्गों से आगे नहीं जाते।

देवों और नारकियों को एक पूर्वकोटि प्रमाण आयु बंध यथायोग्य मनुष्य गति या तिर्यञ्च गति का होता है, क्योंकि वे नरकगति, देवगति एवं भोगभूमिजों में नहीं जाते।

Comments : The maximum duration of the age-determining karma by a living being without the faculty of mind, having five senses and having completed his physical vitalities is little more than in-numerable parts of a 'Palya' because he can take birth as a celestial being or hellish being with a life-span of in-numerable parts of playa. The maximum duration of age-determining karma by one sense being, two sense being, three sense being and four sense being is one Pūrvakoṭi because they cannot take birth as infernal beings, celestial beings and in pleasure-lands. The maximum duration of age-determining karma of Tiryañcas with the faculty of mind & five senses is thirty-three Sāgara because they take birth as infernal beings; that of human beings is of thirty-three Sāgaropama because they take birth as infernals and celestial beings or hellish beings with a life-span of in-numerable parts of a palya. The maximum duration of age-determing karma of humans & Tiryañcas in pleasure lands is two Sāgaropama as they can not take birth in higher heavens above the second heaven.

The maximum bondage of age-determining karma by celestial beings and infernal beings is one Pūrvakoṭi because they do not take birth as infernal beings, celestial beings and pleasure-land-being.

वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति

Minimum duration of Feeling Producing Karma

अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य।।१८।।

(अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य।)

Aparā Dvādaśa Muhūrtā Vedanīyasya. (18)

शब्दार्थ : **अपरा –** जघन्य (स्थिति); **द्वादश मुहूर्ता –** बारह मुहूर्त; **वेदनीयस्य** – वेदनीय (कर्म) की।

Meaning of Words : **Aparā** - minimum (duration); **Dvādaśa Muhūrtā** - twelve Muhūrta; **Vedanīyasya** - of feeling producing karma.

सूत्रार्थ : वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त प्रमाण है।

English Rendering : The minimum duration of feeling producing karma is twelve Muhūrtas.

टीका : वेदनीय कर्म के दो भेद हैं – साता वेदनीय और असाता वेदनीय। साता वेदनीय का जघन्य स्थिति बन्ध बारह मुहूर्त प्रमाण है और असाता वेदनीय का जघन्य स्थिति बन्ध पल्योपम के असङ्ख्यातवें भाग से कम एक सागरोपम का ३/७ भाग प्रमाण होता है। साता वेदनीय कर्म का जघन्य स्थिति बन्ध सूक्ष्म साम्पराय क्षपक (दशवें गुणस्थान में) अपने अन्तिम समय में करता है तथा असाता वेदनीय का जघन्य स्थिति बन्ध सर्व विशुद्ध बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव करता है।

Comments : Feeling producing karma is of two kinds - pleasure feeling producing and pain feeling producing karma. The minimum bondage duration of pleasure feeling producing karma is twelve Muhūrta and that of pain feeling producing karma is $^3/_7$th part of one Sāgaropama

less innumerable parts of one Palyopama. The minimum bondage-duration of pleasure feeling producing karma is earned by an ascetic rising the destructive ladder in the tenth stage of spiritual development in its last moments and the minimum bondage duration of pain feeling producing karma is earned by the one sensed Bādara Sarva Viśuddha being. i.e. declension of the disposition towards purity.

नाम और गोत्र कर्मों की जघन्य स्थिति

Minimum duration of Nāma & Gotra Karmas

नामगोत्रयोरष्टौ।।१९।।

(नाम–गोत्रयोः अष्टौ।)

Nāmagotrayoraṣṭau. (19)

शब्दार्थ : **नामगोत्रयोः** – नाम और गोत्र की (जघन्य स्थिति); **अष्टौ** – आठ (मुहूर्त प्रमाण है)।

Meaning of Words : **Nāmagotrayoḥ** - (minimum duration) of physique determining karma & family status determining karma; **Aṣtau.** - eight (Mahūrta).

सूत्रार्थ : नाम और गोत्र कर्म की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त प्रमाण है।

English Rendering : The minimum duration of physique determining karma and family status determining karma is eight Muhūrtas.

टीका : नाम और गोत्र कर्मों की जघन्य स्थिति बन्ध आठ मुहूर्त प्रमाण दशम गुणस्थान – सूक्ष्म साम्पराय में होता है।

Comments : The minimum bondage duration of Nāma and Gotra karmas of eight Muhūrta is attained in the tenth stage of spiritual development i.e. Sūkṣma Sāmparāya.

शेषाणामन्तर्मुहूर्ता।।२०।।

(शेषाणाम् अन्तः–मुहूर्ता।)

Śeṣāṇāmantarmuhūrta. (20)

शब्दार्थ : **शेषाणाम् –** शेषों (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, आयु और अन्तराय कर्म) की; **अन्तर्मुहूर्ता –** अन्तर्मुहूर्त (जघन्य स्थिति प्रमाण है)।

Meaning of Words : **Śeṣāṇām** - the remaining karmas (i.e. knowledge obscuring, perception obscuring, deluding karma, age determining and obstructive karmas); **Antarmuhūrta** - (minimum duration) Antarmuhūrta i.e. & less than 48 minutes.

सूत्रार्थ : शेष पाँच कर्मों – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, आयु व अन्तराय की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है।

English Rendering : The minimum duration of the remaining five karmas i.e. knowledge obscuring, perception obscuring, deluding, age determining and obstructive karmas is one Antarmuhūrta.

टीका : ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मों की अन्तर्मुहूर्त जघन्य स्थिति सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान में, मोहनीय कर्म की अन्तर्मुहूर्त जघन्य स्थिति अनिवृत्तिकरण बादर साम्पराय (९वें) गुणस्थान में और आयु कर्म की अन्तर्मुहूर्त जघन्य स्थिति सङ्ख्यात वर्ष वाले तिर्यञ्चों और मनुष्यों में बन्ध को प्राप्त होती है।

Comments : The minimum bondage - duration of knowledge obscuring, perception obscuring and obstructive karma of one Antarmuhūrta is earned in the tenth stage of spiritual development-Sūkṣmasāmparāya; that of deluding karma in Anivṛttikaraṇa Bādara Sāmparāya (9th stage of spiritual development) and that of minimum age determining karma is earned by the human beings & Tiryañcas having numerable years of life span.

अनुभव/अनुभाग बन्ध का लक्षण
Characteristics of Fruition of bondage

विपाकोऽनुभवः।।२१।।

(विपाकः अनुभवः।)

Vipāko(a)nubhavaḥ. (21)

शब्दार्थ : **विपाकः** – फल देना; **अनुभवः** – अनुभव/अनुभाग (बन्ध है)।

Meaning of Words : **Vipākaḥ** - fruition; **Anubhavaḥ** Anubhava/ Anubhāga (bondage).

सूत्रार्थ : विविध प्रकार के फल देने की शक्ति को अनुभव या अनुभाग कहते हैं।

English Rendering : Different kinds of fruition is known as Anubhava or Anubhāga.

टीका : द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव लक्षण, निमित्त, भेद से उत्पन्न हुआ नाना प्रकार का पाक विपाक है। इसी को अनुभव या अनुभाग भी कहते हैं। अथवा कर्मों के उदय एवं उदीरणा को विपाक कहते हैं। अनुभाग दो प्रकार का होता है – शुभ और अशुभ रूप। शुभ परिणामों की प्रकर्षता से शुभ प्रकृतियों में प्रकृष्ट अनुभाग पड़ता है और अशुभ प्रकृतियों का निकृष्ट अनुभाग पड़ता है, इसके विपरीत अशुभ परिणाम का अनुभाग होता है। आठ कर्मों की मूल प्रकृतियों का अनुभव स्वमुख से ही प्रवृत्त होता है। आयु, दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय को छोड़कर तुल्य जातीय उत्तर प्रकृतियों का अनुभव परमुख से भी प्रवृत्त होता है। यथा, नरक आयु के मुख से तिर्यञ्च आयु, देव आयु या मनुष्य आयु का विपाक नहीं होता और दर्शन मोहनीय का चारित्र मोहनीय रूप से और चारित्र मोहनीय का दर्शन मोहनीय रूप से विपाक नहीं होता।

Comments : Different kinds of fruition assisted by differences in substance (Dravya), space (Kṣetra), time (Kāla), incarnation (Bhava) and disposition (Bhāva) constitute 'Vipāka'. This is also called 'Anubhāva' or 'Anubhaga', or rise (Udaya) of karmas or ripening before due time (Udīraṇā). Anubhāga is of two kinds - auspicious and inauspicious. Abundance of auspicious thought activity cause abundance of

auspicious fruition - bondage and inauspicious thought activities cause inauspicious fruition bondage. The fruition of each of the eight main types of karmas is by the corresponding nature of the karma alone. In the case of sub-types of the same species except in the case of age determining karma, faith deluding and conduct deluding karmas, fruition is possible by others' nature also. For instance, fruition of age determining karma of an animal or a human being or a celestial is not possible through life in hell. And the fruition of faith deluding karma is not possible through conduct deluding karma.

कर्म का फल मिलने के प्रकार
Method of fruition of Karmas

स यथानाम।।२२।।

(स यथानाम।)

Sa Yathānāma. (22)

शब्दार्थ : **सः** – वह (अनुभव); **यथानाम** – अपने-अपने नाम के अनुसार।

Meaning of Words : **Saḥ** - that (fruition); **Yathānāma** - As per nature of each karma.

सूत्रार्थ : अपने-अपने नाम के अनुसार कर्म का फल प्राप्त होता है।

English Rendering : Fruition occurs according to the nature of the karma's name.

टीका : ज्ञानावरण का फल ज्ञान का अभाव करना है; दर्शनावरण का फल दर्शनशक्ति का उपरोध करना है, इत्यादि रूप से सब कर्मों की सार्थक सञ्ज्ञा जानना चाहिए। सूत्र तीन की टीका में आठों कर्मों की प्रकृतियों – स्वभावों का सङ्क्षिप्त वर्णन किया गया है।

Comments : The fruit of knowledge obscuring karma is absence of knowledge. The effect of perception obscuring karma is to block up

perception, Thus, the effects of all karmas are significant and true to their meaning. Under comments of Sūtra 3, a brief description of the nature of eight karmas has been given.

फल देने के बाद कर्मों की स्थिति

State of Karmas after fruition

ततश्च निर्जरा।।२३।।

(ततः च निर्जरा।)

Tataśca Nirjarā. (23)

शब्दार्थ : **ततः**– फल देने के पश्चात्; **च** – अन्य प्रकार से भी (निर्जरा हो सकती है); **निर्जरा** – निर्जरा (यानी एक देश कर्मों का क्षय होना)।

Meaning of Words : **Tataḥ** - after fruition; **Ca** - otherwise also dissociation of karmas take place; **Nirjarā** - partial dissociation of karmas.

सूत्रार्थ : पूर्वबद्ध कर्म का झड़ जाना ही निर्जरा है। निर्जरा दो प्रकार की होती है – सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जरा या द्रव्य निर्जरा और भाव निर्जरा। कर्मों के निश्चित समय पर उदय में आकर शुभाशुभरूप फल देकर निर्जरित होना सविपाक निर्जरा है। कर्मों के उदय से जीव के कषाय परिणाम होते रहते हैं और उससे नये कर्मों का बन्ध होता रहता है। अतः मोक्षमार्ग में सविपाक निर्जरा उपयोगी नहीं है, लेकिन जिस प्रकार आम, केला आदि को अधिक ऊष्मा देकर समय से पहले पका लिया जाता है, उसी प्रकार कर्म को तप आदि के द्वारा समय से पहले अनुभव में लिया जाता है, वह अविपाक निर्जरा है। अविपाक निर्जरा सम्यग्दृष्टि के ही होती है और यही मोक्षमार्ग में परम्परा से मुक्ति की साधन है। इसके अतिरिक्त भी एक और प्रकार निर्जरा का है और वह है अकाम निर्जरा। अपनी इच्छा के बिना इन्द्रिय के विषयों का त्याग करने पर या परवश होकर भोग–उपभोग का विरोध होने पर उसे शान्ति से सह लेना, इससे जो कर्मों की निर्जरा होती है, उसे अकाम निर्जरा कहते हैं।

जो कर्म निर्जरित होते हैं, वह द्रव्य निर्जरा है। जीव के जिन भावों से पुद्गल कर्म निर्जरित होते हैं, वे जीव के परिणाम भाव निर्जरा है।

Comments : Shedding of earlier bound karmas is 'Nirjarā'. It is of two kinds - 'Savipāka Nirjarā' (shedding on maturity) and 'Avipāka Nirjarā' (shedding before maturity). Or Dravya Nirjarā (objective shedding) and Bhāva Nirjarā (volitional shedding). Fruition of karmas on their maturity after causing pleasure or pain and shedding thereafter is 'Savipāka Nirjarā'. Due to rise of karmas, a being attains passionate volitions and that cause bondage of fresh karmas. As such, in the path of salvation, 'Savipāka Nirjarā' is not useful. But like ripening of mangoes or bananas by applying additional heat before their due time, ripening of karmas before their due time is made by means of penance etc. and that is known as 'Avipāka Nirjarā'. 'Avipāka Nirjarā' is possible only by a right believer and that is the means of salvation as a matter of course. In addition to this, there is yet another method of shedding of karmas and that is 'Akāma Nirjarā'. Involuntary abstinence of sense pleasures or abstinence of enjoyment of consumables & non-consumables under compulsion, if endured with equanimity, leads to shedding of karmas and that is known as 'Akāma Nirjarā'. The shedding of karma particles is 'Dravya Nirjarā'. The volitions of a living being which cause shedding of karma particles are known as 'Bhāva Nirjarā' or Volitional shedding.

प्रदेश बन्ध
Bondage of space points

नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः।।२४।।

(नाम–प्रत्ययाः सर्वतः योग–विशेषात् सूक्ष्म–एक–क्षेत्र–अवगाह–स्थिताः सर्व–आत्म–प्रदेशेषु अनन्तानन्त–प्रदेशाः।)

Nāmapratyayāḥ Sarvato Yogaviśeṣātsūkṣmaikakṣetrā-vagāhasthitāḥ Sarvātmapradeśeṣvanantānantāpradeṣāḥ. (24)

शब्दार्थ : **नामप्रत्ययाः** – कर्म प्रकृतियों के अनुसार; **सर्वतः** – सभी (भवों) में; **योगविशेषात्** – योग की विशेषता से; **सूक्ष्म** – सूक्ष्म; **एकक्षेत्रावगाहस्थिताः** – एक क्षेत्रावगाहरूप से स्थित; **सर्वात्मप्रदेशेषु** – आत्मा के सभी प्रदेशों में; **अनन्तानन्तप्रदेशाः** – अनन्तानन्त प्रदेश (हैं)।

Meaning of Words : **Nāmapratyayāḥ** - according to the nature caused by their name; **Sarvataḥ** - in all life-courses; **Yogaviśeṣāt** - differences in Yoga i.e. activities of mind, speech and body; **Sūkṣma**-subtle; **Ekakṣetrāvagāhasthitāḥ** - exist in the same space-point; **Sarvātmapradeśeṣu** - of all the space-points of the soul; **Anantānanta-pradeṣāḥ** - are infinite space-points.

सूत्रार्थ : अपने नाम के अनुसार सभी भवों में योग विशेष से सूक्ष्म, एकक्षेत्रावगाही, अनन्तानन्त कर्म पुद्गल आत्मा के सम्पूर्ण प्रदेशों में प्रति समय सम्बन्ध को प्राप्त होना प्रदेश बन्ध है।

English Rendering : The infinite times kārmic molecules always pervade in the subtle form in the entire space-points of every soul in every life-course and these are absorbed by the soul because of its activities of mind, body & speech. This is known as 'Pradeśa Bandha'.

टीका : नाम के कारणभूत कर्म परमाणु 'नामप्रत्यय' कहलाते हैं। अर्थात् कर्मरूप से परिणत होने योग्य परमाणु या स्कन्ध ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि प्रकृतियों के कारण होते हैं, अतः 'नामप्रत्ययाः' कहा है। ऐसे पुद्गल परमाणु सङ्ख्यात या असङ्ख्यात या अनन्त नहीं होते हैं, किन्तु अनन्तानन्त होते हैं। ये कर्म परमाणु आत्मा के समस्त प्रदेशों में व्याप्त रहते हैं। आत्मा के एक-एक प्रदेश में अनन्तानन्त पुद्गल स्कन्ध रहते हैं। अतः 'सर्वात्मप्रदेशेषु' कहा है। ऐसे प्रदेशों का बन्ध सब भवों में और सभी कालों में होता है। सभी प्राणियों के अतीत भव अनन्तानन्त होते हैं और भविष्य भव किसी के सङ्ख्यात, किसी के असङ्ख्यात और किसी के अनन्त/अनन्तानन्त भी होते हैं। इन सब भवों में जीव प्रति समय अनन्तानन्त कर्म परमाणुओं का बन्ध करता है, अतः 'सर्वतः' कहा है। यहाँ 'सर्वतः' शब्द का अर्थ काल है। इस प्रकार के कर्म परमाणुओं का बन्ध योग की विशेषता के अनुसार होता है, अतः 'योगविशेषात्'

पद दिया है। ये कर्म परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं; आत्मा के एक प्रदेश में अनन्तानन्त कर्म परमाणु स्थिर होकर रहते हैं। अतः 'सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः' पद दिया है। एक क्षेत्र का अर्थ आत्मा का एक प्रदेश है। ये कर्म परमाणु घनाङ्गुल के असङ्ख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र में रहते हैं; एक समय, दो समय, तीन समय आदि सङ्ख्यात समय और असङ्ख्यात समय की स्थिति वाले, पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाले होते हैं। ये प्रति समय आठ या सात (आयु कर्म बन्ध से रहित) कर्म प्रकृतियों के योग्य कर्म स्कन्ध योग विशेष से आत्मा के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। इस प्रकार प्रदेशबन्ध का यहाँ कथन किया गया है।

Comments : 'Nāmapratyaya' means species of karmas indicated by the name. Matter molecules converted as knowledge obscuring, perception obscuring etc. are causes of that type of nature and hence are termed as 'Nāmapratyayaḥ'. Such matter particles are not numerable or in-mumerable but are infinite times of infinite. These karma particles pervade the entire space-points of the soul. Each and every space-point of the soul has infinite times of infinite matter molecules. As such it is said to be 'Sarvātmapradeśeṣu'. Such bondage of space-points continus to take place in all life-courses and at all times. All beings have infinite times of infinite past life-courses and some have numerable, some in-numerable and some infinite times of infinite future life-courses. In all these life-courses, a living being binds in every unit of time infinite times of infinite karma particles and as such it is said 'Sarvataḥ'. Here the meaning of 'Sarva' is time. The bondage of karma particles takes place as a consequence of the type of 'Yoga' and as such it is stated as 'Yogaviśeṣāt'. The karma particles are very subtle, infinite times of infinite karma particles exist stationary in one space-point of a soul and as such 'Sūkṣmaikakṣetrāvagāhasthitaḥ' term is given. One Kṣetra means one space-point of the soul. These karma particles occupy in-numerableth part of 'Ghanāṅgula'. These are of varied durations i.e. one, two, three etc., numerable and in-numerable 'Samayas' having five colours, five tastes, two odours and eight kinds of touch. Such karma particles are bound by the soul all the time in the form of eight or seven (except age determining karma) kinds of karma particles depending on the specific difference in Yoga. In this way, the description of space-bondage is given here.

पुण्य प्रकृतियाँ

Meritorious nature Karmas

सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम्।।२५।।

(सत्–वेद्य–शुभ–आयुः–नाम–गोत्राणि पुण्यम्।)

Sadvedyaśubhāyurnāmagotraṇi Puṇyam. (25)

शब्दार्थ : **सद्वेद्य** – प्रशस्त वेदनीय – सातावेदनीय; **शुभायुर्नाम–गोत्राणि–** शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र; **पुण्यम्** – पुण्य (प्रकृतियाँ हैं)।

Meaning of Words : **Sadvedya** - pleasure feeling karma; **Śubhāyurnāmagotraṇi** - auspicious age determining karma, auspicious physique determining karma and auspicious family status determining karma; **Puṇyam** - are meritorious karmas.

सूत्रार्थ : साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र – ये पुण्य प्रकृतियाँ हैं।

English Rendering : Pleasure feeling karmas, auspicious age determining karma, auspicious physique determining karma and auspicious family status determining karma, all these are meritorious nature of karmas.

टीका : शुभ से तात्पर्य प्रशस्तपने से है। वेदनीय कर्म में साता वेदनीय शुभ है। शुभ आयु तीन हैं - तिर्यञ्च आयु, मनुष्य आयु और देव आयु। शुभ नाम कर्म की सैंतीस प्रकृतियाँ हैं - मनुष्य गति, मनुष्य गत्यानुपूर्व्य, देव गति, देव गत्यानुपूर्व्य, पञ्चेन्द्रिय जाति, पाँच शरीर, तीन अङ्गोपाङ्ग, समचतुरस्र संस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्ण, प्रशस्त रस, प्रशस्त गन्ध और प्रशस्त स्पर्श, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्ति, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण और तीर्थङ्कर। उच्च गोत्र शुभ गोत्र है। इस प्रकार कुल 42 प्रकृतियाँ पुण्य रूप हैं।

Comments : 'Śubha'; means auspicious. In feeling producing karma, pleasure feeling producing karma is auspicious. Three auspicious ages are - Tiryañca age, human age and celestial age. Auspi-

cious Nāma karma is of thirty-seven kinds - human life-course, Manusya Gatyānupūrvya, celestial life-course, Devagatyānupūrvya, five sense-class, five bodies, three kinds of limbs & sub-limbs, completely balanced body structure, Vajrarṣabhanārāca osseous structure, pleasant colour, pleasant taste, pleasant odour and pleasant touch, Agurulaghu, Paraghāta, Ucchvāsa, Ātapa, Udyota, pleasant Vihāyogati, Trasa, Bādara, Paryāpti, Pratyeka Śarīra, Sthira, Śubha, Śubhaga, Susvara, Ādeya, Yaśaḥkīrti, Nirmāṇa and Tīrthaṅkara. High status is auspicious Gotra. Auspicious feeling producing is also auspicious. Thus in all forty-two kinds of karma nature are auspicious.

पाप प्रकृतियाँ
De-meritorious nature Karmas

अतोऽन्यत् पापम्।।२६।।

(अतः अन्यत् पापम्।)

Ato(a)nyat Pāpam. (26)

शब्दार्थ : **अतः अन्यत्** – इनके सिवाय शेष (बची हुईं); **पापम्** – पाप (प्रकृतियाँ हैं)।

Meaning of Words : **Ataḥ Anyat** - excepting these, the remaining ones; **Pāpam** - are demeritorious karmas.

सूत्रार्थ : इनके सिवाय शेष सभी कर्म प्रकृतियाँ पाप रूप हैं।

English Rendering : Excepting these, all the remaining nature of karmas are demeritorious.

टीका : घातिया कर्मों की सभी (ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरण की नौ, मोहनीय की (बंध योग्य) छब्बीस और अन्तराय की पाँच – कुल पैंतालीस) प्रकृतियाँ पाप रूप हैं। अघातिया कर्मों में असाता वेदनीय की एक, आयु कर्म में नरक आयु और नीच गोत्र – ये सभी पाप रूप हैं। नाम कर्म की नरक गति, नरक गत्यानुपूर्व्य,

तिर्यञ्च गति, तिर्यञ्च गत्यानुपूर्व्य, एकेन्द्रिय आदि शेष चार जातियाँ, शेष पाँचों संस्थान, शेष पाँचों संहनन, अप्रशस्त वर्ण, अप्रशस्त रस, अप्रशस्त गन्ध, अप्रशस्त स्पर्श, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण शरीर, अपर्याप्ति, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और अयशःकीर्ति – ये नाम कर्म की ३४ प्रकृतियाँ पाप रूप हैं। इस प्रकार कुल ८२ प्रकृतियाँ पाप रूप हैं।

सूत्र २५ की टीका में ४२ पुण्य प्रकृतियों का उल्लेख किया गया है। अतः पुण्य और पाप प्रकृतियाँ कुल मिलाकर १२४ हो जाती हैं, जबकि बन्ध योग्य कुल प्रकृतियाँ १२० ही होती हैं। स्पर्श, रस, गन्ध एवं वर्ण प्रकृतियाँ प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों रूप होने से पुण्य और पाप दोनों प्रकृतियों में सम्मिलित होती हैं। अतः बन्ध योग्य प्रकृतियाँ तो १२० ही हैं।

Comments : All varieties of destructive karmas (Ghātiyā karma five of knowledge-obscuring, nine of perception-obscuring, twenty six of deluding in the context of Bondage and five of obstructive karmas, in all forty-five) are demerit in nature. Amongst non-destructive (Aghātiyā) karmas, one of painful feeling producing karma, infernal age of age determining karmas and low family status determining karma are demerit. Amongst Nāma karma, demerit karmas are - infernal life-course, Naraka Gatyānupūrvya, Tiryañca Gati, Tiryañca Gatyānupūrvya, four classes, five body structures, five osseous structures, in-auspicious colour, in-auspicious taste, in-auspicious odour, in-auspicious touch. Upaghāta, in-auspicious Vihāyogati, immobile, subtle, common body, Aparyāpti, Asthira, Aśubha, Durbhaga, Duḥsvara, Anādeya and Ayaśaḥkīrti. These are thirty-four kinds of Nāma karma which are de-meritorious. Thus there are in all eighty-two karmas which are de-meritorious.

Under comments of Sūtra 25, forty-two karmas are described as meritorious. As such addition of merit and de-merit karma kinds becomes 124, where as bondage capable karmas are only 120. It is because karma nature of touch, taste, odour & colour are both auspicious and in-auspicious and as such these are included both as merit and demerit karmas. Bondage capable karmas are only 120.

इति तत्त्वार्थसूत्रेऽष्टमोऽध्यायः।

End of Eighth Chapter of Tattvārthasūtra.